अच्छी-अच्छी बातें

शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी

अच्छी-अच्छी बातें

(3)

आयतुल्लाह
शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी

ट्रांस्लेशन
अब्बास असग़र शबरेज़

بسم الله الرحمن الرحيم

अल्लाह के रसूल[स0] ने फ़रमाया हैः

- इल्म (पढ़ना–पढ़ाना) हर मुसलमान पर वाजिब है।
- झूले से लेकर क़ब्र तक इल्म हासिल करो।
- इल्म हासिल करो चाहे इसके लिए चीन तक जाना पड़े।
- हिकमत (Wisdom) मोमिन की खोई हुई पूंजी है। जिसे अपनी खोई हुई पूंजी कहीं मिल जाती है वह उसे उठाने में कभी देर नहीं करता है।

Contents

(1)

इल्म

(Knowledge)

रसूले इस्लाम स० की बहुत मशहूर हदीस है जिसको शिया-सुन्नी दोनों मानते हैंः

इल्म (पढ़ना-पढ़ाना) हर मुसलमान पर वाजिब है।[1]

रसूले इस्लाम स० की ऐसी हदीसें बहुत कम हैं जिन्हें शिया-सुन्नी दोनों मानते हों मगर यह हदीस उन हदीसों में से एक है जिसे सब मानते हैं।

बहरहाल इस हदीस का मतलब यह हैः

वाजिब कामों में से एक काम इल्म यानी पढ़ना-पढ़ाना भी है। इल्म हासिल करना हर मुसलमान पर वाजिब है जिसमें किसी वर्ग, क्लास, ग्रुप या फ़िरक़े की कोई शर्त नहीं है।

इतिहास की किताबों में लिखा हुआ है कि इस्लाम के आने से पहले पढ़े-लिखे समाजों में पढ़ना-लिखना बस कुछ ही लोगों का काम था, दूसरा कोई पढ़-लिख नहीं सकता था। इस्लाम ने इतना ही नहीं किया कि इस दीवार को गिराया बल्कि यह भी किया कि दूसरे सारे वाजिब कामों की तरह इल्म को भी सब पर वाजिब कर दिया।

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 1, पेज. 30

इस्लाम में नमाज़ वाजिब है, रोज़ा वाजिब है, ज़कात वाजिब है, हज वाजिब है, जिहाद वाजिब है, अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना व बुराईयों से रोकना) वाजिब है... इसी तरह इस हदीस की बुनियाद पर इल्म हासिल करना भी वाजिब है।

इस हदीस के बारे में मुसलमान उलमा के बीच किसी तरह का कोई झगड़ा नहीं है। सारे उलमा इस हदीस को मानते हैं। शुरू से लेकर आज तक इस्लाम के सभी फ़िरक़ों और सारे उलमा ने इस हदीस को माना है। कोई भी हदीस की किताब हो उस में एक चेप्टर ''इल्म वाजिब है'' ज़रूर होता है।

अगर कोई झगड़ा है तो बस इस हदीस के मायनी और मतलब में है कि आख़िर यह हदीस कहना क्या चाहती है।

मुसलमान समाज की हालत

अभी हमें यह बात नहीं करना है कि इस्लाम ने पढ़ने-लिखने पर कितना ज़्यादा ज़ोर दिया है और क़ुरआनी आयतों, हदीसों व इतिहास की किताबों में क्या कुछ कहा गया है। न ही इस बात को साबित करना है कि इस्लाम ने पढ़ने-लिखने पर कितना ज़ोर दिया है और किस तरह लोगों को इल्म की तरफ़ बुलाया है क्योंकि इस बारे में बातें तो बहुत हो चुकी हैं और होती भी हैं लेकिन लगता ऐसा है कि इन बातों का कोई बहुत ज़्यादा फ़ाएदा नहीं है। इस बारे में अब तक न जाने कितना कहा जा चुका है लेकिन इसके बाद भी जब हम दुनिया भर में मुसलमानों की हालत देखते हैं तो हमें सब से ज़्यादा जाहिल और पिछड़े लोग मुसलमान ही दिखाई पड़ते हैं। दुनिया में मुस्लिम देशों से ज़्यादा जाहिल कहीं नहीं हैं।

इन सब बातों को देखने के बाद कुछ समझ में नहीं आता कि यह सब क्या हो रहा है क्योंकि एक तरफ़ तो इस्लाम ने अपने मानने वालों के अंदर इल्म का शौक़ उभारने की इतनी

भरसक कोशिशें की हैं कि इल्म को हर मुसलमान के लिए वाजिब कर दिया है और उधर मुसलमानों का हाल यह है कि दुनिया में सब से ज़्यादा पिछड़े हुए भी वही हैं।

इसलिए इस बात को साबित करने के बजाए कि इस्लाम ने पढ़ने-पढ़ाने पर सब से ज़्यादा ज़ोर दिया है, ज़्यादा अच्छा यह होगा कि हम इस बात पर ध्यान दें कि मुसलमान समाज आज कौन-कौन सी दिक़्क़तों और कौन-कौन सी बुराईयों में घिरा हुआ है। इसके बाद इन मुश्किलों और बुराईयों को दूर करने की कोशिश की जाए।

अल्लामा शरफ़ुद्दीन ने शिया फ़िरक़े और अहलेबैत[अ०] को पहचनवाने के लिए बहुत अच्छी-अच्छी किताबें लिखी थीं लेकिन जब उन्होंने लेबनान में देखा कि वहाँ सब से ग़रीब, सब से गिरे हुए और सब से जाहिल शिया ही हैं जिनमें न कोई डॉक्टर दिखाई देता है न कोई इंजीनियर और अगर दिखते भी हैं तो बहुत कम और इस के उलट जितने भी छोटे-मोटे काम करने वाले, मज़दूर, नौकर-चाकर और देख-रेख करने वाले हैं वह सब के सब शिया हैं तो उन्होंने सोचा कि जब मेरी क़ौम का यह हाल है तो फिर मेरी यह सारी किताबें किस काम की? भला इन किताबों का असर होगा ही किस पर? कौन मेरी इन किताबों को पढ़ेगा? दूसरे भी कहेंगे कि अगर सच में शिया आइडियॉलोजी इतनी ही अच्छी है और इतनी ही कामयाब बनाने वाली है तो फिर शियों की हालत तो बहुत अच्छी होना चाहिए थी।

इसके बाद वहाँ एक प्रेक्टिल एप्रोच अपनाकर स्कूल, कॉलेज, वेल्फ़ेयर कमेटियाँ और टेक्निकल सेंटर्स बनाए गए जो आज एक बहुत बड़ा मिशन बन गया है। आज के लेबनान का शिया समाज इस बात का खुला सुबूत है।

आज सारी दुनिया में मुसलमानों की वही हालत है जो लेबनान में अल्लामा शरफ़ुद्दीन के मिशन के शुरू होने से पहले वहाँ के शियों की थी।

इल्म पर इस्लाम ने कितना ज़ोर दिया है और मुसलमानों के अंदर इल्म का शौक़ उभारने के लिए कितनी कोशिशें की हैं, हम इस पर जितनी चाहे बातें कर लें लेकिन इस से मुसलमानों की आज की हालत बिल्कुल बदलने वाली नहीं है।

इन सारी बातों के बाद सब से बड़ा सवाल यही पैदा होता है कि अगर सच में इस्लाम ने इल्म पर इतना ही ज़ोर दिया है और इस्लाम इल्म को इतना ही बड़ा मानता है तो फिर मुसलमानों की इतनी बुरी हालत क्यों है ?

आइए! आगे बढ़ने से पहले इस बारे में रसूले इस्लाम[स०] की चार हदीसों पर एक नज़र डालते हैं।

पहली हदीस

पहली हदीस तो वही है जो अभी ऊपर बयान हुई है और वह यह हैः

इल्म (पढ़ना-पढ़ाना) हर मुसलमान पर वाजिब है।

इस हदीस में कोई भी शर्त नहीं लगी हुई है, यहाँ तक कि मर्द-औरत के हिसाब से भी कोई फ़र्क़ नहीं है क्योंकि अरबी में मुसलमान को मुस्लिम कहते हैं, चाहे वह मर्द हो या औरत। और इस हदीस में मुस्लिम शब्द ही लिखा हुआ है।

यह हदीस कह रही है कि इल्म हासिल करना सबकी ड्युटी है यानी यह किसी एक वर्ग या फ़िरक़े से जुड़ी कोई चीज़ नहीं है। बहुत सी चीज़ें बस कुछ ही लोगों पर वाजिब होती हैं, दूसरों पर वाजिब नहीं होतीं जैसे हो सकता है कि कोई चीज़ जवानों पर वाजिब हो लेकिन बूढ़ों पर वाजिब न हो या इस्लामी हुकूमत के लीडर पर वाजिब हो लेकिन आम लोगों पर वाजिब न हो या मर्दों पर वाजिब हो मगर औरतों पर न हो जैसे जिहाद या नमाज़े जुमा जो बस मर्दों पर वाजिब है, औरतों पर वाजिब नहीं है।

लेकिन यह वाजिब जिसका नाम इल्म है यह हर मुसलमान पर वाजिब है जिसमें सब लोग बराबर हैं और किसी तरह का कोई फ़र्क़ नहीं है।

दूसरी हदीस

झूले से लेकर क़ब्र तक इल्म हासिल करो।

इस हदीस का सीधा सा मतलब यह है कि इल्म के लिए कोई उम्र नहीं होती। किसी भी उम्र में पढ़ने-पढ़ाने का मौक़ा मिले तो उसे गंवाना नहीं चाहिए और पढ़ लेना चाहिए।

जिस तरह पहली हदीस में मर्द-औरत, छोटे-बड़े, क़ौम या फ़िरक़े का कोई फ़र्क़ नहीं था उसी तरह इस हदीस में भी उम्र या वक़्त की कोई शर्त नहीं है।

हो सकता है कि कोई इस्लामी हुक्म ऐसा भी हो जो हर पीरियड या हर उम्र में पूरा न किया जा सकता हो जैसे वाजिब रोज़े के लिए एक तय वक़्त होता है जैसे रमज़ान का महीना या ख़ुद नमाज़ का भी एक ख़ास वक़्त तय है। हज भी वाजिब है लेकिन यह एक ऐसा वाजिब है जिसे हर वक़्त नहीं किया जा सकता बल्कि हज का एक ख़ास वक़्त होता है जो कि मोहर्रम से पहले ज़िलहिज्जाह के महीने में ही किया जा सकता है लेकिन इल्म एक ऐसा वाजिब काम है जिसके लिए कोई ख़ास उम्र या पीरियड तय नहीं किया गया है। अगर रोज़े रमज़ान के महीने में रखे जा सकते हैं, हज बस ज़िलहिज्जाह के महीने में ही हो सकता है और ज़ोहर-अस्र की नमाज़ का वक़्त बस ज़ोहर से सूरज के डूबने तक ही है मगर पढ़ने-पढ़ाने का वक़्त झूले से क़ब्र तक है।

तीसरी हदीस

इल्म हासिल करो चाहे चीन तक जाना पड़े।[1]

यह हदीस बता रही है कि अगर इल्म के लिए दुनिया की सब से दूर वाली जगह पर भी जाना पड़े तो वहाँ भी चले जाओ। इस हदीस में चीन का नाम शायद इसलिए लिया गया है क्योंकि उस ज़माने में चीन ही ऐसी जगह थी जो बहुत दूर थी और जहाँ जाने में बहुत कठिनाईयाँ होती थीं। इसकी एक वजह यह भी हो सकती है कि चीन इल्म और तरक़्क़ी में बहुत मशहूर भी रहा है।

यह हदीस कह रही है कि इल्म के लिए जिस तरह किसी ख़ास वक़्त या उम्र की शर्त नहीं है उसी तरह किसी ख़ास जगह की भी कोई शर्त नहीं है।

हो सकता है कि कोई वाजिब काम ऐसा भी हो जिसके लिए किसी ख़ास जगह का होना ज़रूरी हो जैसे हज बस मक्के में हज़रत इब्राहीम व इस्माईल के बनाए अल्लाह के घर ख़ान-ए-काबा के अंदर ही किया जा सकता है। हज के लिए काबे की शर्त लगी हुई है लेकिन इल्म के लिए किसी भी जगह या ज़मीन की कोई शर्त नहीं है चाहे मक्का हो या मदीना, मिस्र हो या ईरान, सीरिया हो या ईराक़ या दुनिया की दूर से दूर कोई भी जगह, चाहे पूरब या पश्चिम।

दूसरी और बहुत सारी हदीसें भी हैं जिन्हें पढ़कर आसानी से अन्दाज़ा हो जाता है कि इस्लाम ने पढ़ने-पढ़ाने के लिए अपना शहर छोड़कर कहीं जाने और सफ़र करने पर कितना ज़ोर दिया है।

क़ुरआन करीम में सूरए निसा की आयत/100 भी इल्म का दर्जा बता रही हैः

> जो भी अल्लाह और उसके रसूल के रास्ते पर चलने के लिए अपने घर से निकले और रास्ते में उसे मौत

---

[1] बिहारूल अनवार, जि. 1, पेज. 180

> आ जाए तो उसकी जज़ा[1] (बदला) अल्लाह के ऊपर है।

इस आयत की तफ़सीर में बताया गया है कि यह आयत इल्म के लिए सफ़र करने के बारे में है।

एक हदीस यूँ भी हैः

> अगर तुम जान जाते कि इल्म में कैसी-कैसी कामयाबियाँ छुपी हुई हैं तो तुम इल्म के पीछे दौड़ पड़ते, फिर चाहे इस रास्ते में तुम्हारा ख़ून ही क्यों न बहा दिया जाता और चाहे तुम्हें दरियाओं व समुद्रों को ही क्यों न फलांगना पड़ता।[2]

चौथी हदीस

किताबों में रसूले इस्लाम[स०] की एक हदीस यह भी मिलती हैः

> हिकमत (Wisdom) मोमिन की खोई हुई चीज़ है। जिसे अपनी खोई हुई चीज़ कहीं मिल जाती है वह उसे उठाने में कभी देर नहीं करता है।[3]

हिकमत यानी मज़बूत, सही और गहरी बात यानी हक़ीक़त (Reality)। हर ऐसा क़ानून या फ़ार्मूला जो हवाई न हो बल्कि हक़ीक़त की बुनियाद पर बनाया गया हो उसे 'हिकमत' कहते है।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> हिकमत मोमिन की खोई हुई चीज़ है। इसलिए उसे ढूँढो चाहे वह मुश्रिक ही के पास क्यों न हो। चूंकि

---

[1] यह बदला कैसा होगा और कितना होगा, इसके बारे मे बस अल्लाह ही जानता है।

[2] बिहारूल अनवार, जि. 2, पेज. 177

[3] बिहारूल अनवार, जि. 2, पेज. 99

> तुम मोमिन हो इसलिए इस पर तुम्हारा हक़ ज़्यादा बनता है और तुम इसके ज़्यादा हक़दार हो।

इमाम[अ०] एक दूसरी जगह फ़रमाते हैंः

> हिकमत मोमिन की खोई हुई चीज़ है।
>
> इसलिए जहाँ मिले इसे उठा लो चाहे यह मुनाफ़िक़ों[1] के पास ही क्यों न हो।[2]

इस तरह की और भी हदीसें हैं और इन सारी हदीसों का रिज़ल्ट यही है कि इल्म के लिए अगर कोई शर्त है तो बस यह कि इल्म सही और हक़ीक़ी (Real) हो। इल्म कौन सिखा रहा है, वह कौन है, कैसा है और उसकी सोच कैसी है... इन सब बातों से कोई मतलब नहीं होना चाहिए, बस उस से इल्म लो और आगे बढ़ जाओ।

हाँ! ऐसा भी हो सकता है कि आदमी इल्म के सही होने में ही शक करने लगे और उसे पता ही न हो कि जो इल्म वह सीखने जा रहा है वह सही है भी या नहीं। ऐसे में आदमी को अपनी आंखें बंद करके हर एक की बात पर अपने कान नहीं धरना चाहिएं। पहले यह देखना चाहिए कि कौन सिखा रहा है और क्या सिखा रहा है। अगर इस मामले में ध्यान नहीं दिया गया तो फिर बहकने का ख़तरा बहुत ज़्यादा है।

इसके उलट यह भी हो सकता है कि आदमी को पता हो कि सामने वाला जो बात कह रहा है या जो इल्म सिखा रहा है वह बिल्कुल सही है जैसे मेडिकल साइंस, फ़िज़िक्स, कैमेस्ट्री वग़ैरा। सभी जानते हैं कि इन्हें पढ़ना और इन पर नई-नई रिसर्च करना एक अच्छा काम है।

हदीस में है कि हज़रत ईसा[अ०] ने फ़रमाया हैः

> हक़ जहाँ भी मिले उसे ले लो, चाहे ग़लत लोगों के पास ही क्यों न हो लेकिन ग़लत बातें किसी से मत

---

[1] Hypocrites

[2] नहजुल बलाग़ा, हिकमत/80

> लो चाहे वह सही रास्ते पर चलने वालों के पास ही क्यों न हों। अपनी जगह पर तुम ख़ुद बातों को तौलने और परखने वाले बनो।[1]

बहरहाल इन हदीसों ने इल्म के बारे में हर तरह की शर्त को ख़त्म कर दिया है और साफ़-साफ़ बता दिया है कि एक मुसलमान पढ़ने-पढ़ाने के लिए किसी के पास भी और कहीं भी जा सकता है क्योंकि हो सकता है कि किसी इस्लामी हुक्म को उसी वक़्त पूरा किया जा सकता हो जब उस हुक्म की शर्त भी पूरी हो रही हो जैसे नमाज़े जमाअत है कि किसी भी आदमी के पीछे पढ़ी जा सकती है लेकिन शर्त यह है कि नमाज़ पढ़ाने वाला मुसलमान, मोमिन, आदिल और बालिग़ हो लेकिन पढ़ने-पढ़ाने में ऐसी कोई शर्त नहीं है।

बीसवीं सदी के शुरू में ईराक़ में अरबी ज़बान में *अल-इल्म* नाम की एक मैग्ज़ीन निकलती थी जिसके एडिटर हिबतुद्दीन शहरिस्तानी हुआ करते थे। यह मैग्ज़ीन लगभग दो-तीन साल तक निकलती रही थी। इस मैग्ज़ीन के बैक कवर पर बीच में अरबी में बड़ा-बड़ा *इल्म* लिखा होता था और उसके चारों कोनों पर यह चारों हदीसें लिखी होती थीं जिनके बारे में अभी हम ने बात की है। एक बार इसी मैग्ज़ीन में छपा था कि जर्मनी से एक आदमी मैग्ज़ीन के एडिटर शहरिस्तानी से मिलने आया। मैग्ज़ीन भी वहीं रखी हुई थी। उस आदमी ने मैग्ज़ीन उठाई तो हमेशा की तरह उसके बैक कवर पर चारों हदीसों के साथ वही इल्म वाला डिज़ाइन बना हुआ था। उसने पूछा कि यह क्या लिखा हुआ है? जवाब दिया गया कि यह इल्म के बारे में हमारे आख़िरी रसूल[स०] की चार हदीसें हैं। उसने ट्रांस्लेशन करने के लिए कहा तो वह भी कर दिया गया कि अल्लाह के रसूल ने फ़रमाया हैः (1) इल्म हासिल करना हर मुसलमान मर्द और औरत पर वाजिब है, (2) झूले से लेकर क़ब्र तक इल्म सीखते रहो, (3) इल्म हासिल करो चाहे चीन तक जाना

---

[1] बिहारूल अनवार, जि. 2, पेज. 96

पड़े, (4) और आख़िर में यह कि हिकमत[1] मोमिन की खोई हुई चीज़ है। जहाँ भी मिल जाए फ़ौरन उठा लो, यह भी मत देखो कि किस के हाथ से ले रहे हो।

जर्मनी से आने वाला वह आदमी कुछ देर तक सोचने के बाद बोला कि अच्छा! आपके रसूल ने आपको इस तरह का हुक्म भी दिया है और इल्म को आप सब पर वाजिब कर दिया है जिसमें न औरत–मर्द की शर्त है न वक़्त या उम्र की, न जगह की कोई शर्त है और न सिखाने वाले की। इसके बाद भी मुसलमान इतने जाहिल व पिछड़े हुए हैं? इस के बाद भी आप लोगों के बीच इतने ज़्यादा अनपढ़ दिखाई देते हैं?

सच! अपने आप में यह ख़ुद एक बहुत बड़ा सवाल है कि ऐसा क्या हुआ कि समाजी तौर पर वाजिब किए गए इस काम को क्यों भुला दिया गया? इस वाजिब काम को क्यों नहीं समझा गया? क्यों इस हुक्म को पूरा नहीं किया गया?

ऐसा नहीं है कि मुसलमानें ने कभी इस हुक्म को माना ही न हो क्योंकि इस्लाम तो ऐसा दीन है जिसने पढ़ने–पढ़ाने का वह मिशन शुरू किया था जिसका नमूना पूरी दुनिया में कहीं भी दिखाई नहीं देता। इस्लाम ने सैंकड़ों साल तक दुनिया में इल्म व कल्चर का झंडा ऊँचा रखा है और यह सब उसी वाजिब हुक्म की वजह से हो पाया था जो इस्लाम ने इल्म के बारे में दिया था।

क़ुरआन की तो पहली आयत ही पढ़ने–लिखने का दर्जा बता रही हैः

> उस पालने वाले का नाम लेकर पढ़ो जिसने तुम्हें पैदा किया है। उसने इन्सान को जमे हुए ख़ून से पैदा किया है। पढ़ो और तुम्हारा पालने वाला बड़ा करीम है जिसने क़लम से सिखाया है। उसने इन्सान को वह सब बता दिया है जो उसे पता नहीं था।[2]

---

[1] Wisdom

[2] सूरए अलक़/ 1–5

जिस दीन की बुनियाद ही तौहीद पर रखी गई थी, वही तौहीद जिस में तक़लीद करना किसी भी तरह से जायज़ नहीं है जिसके लिए रिसर्च करना और सोच-विचार करना ज़रूरी है, फिर कैसे हो सकता है कि ऐसा दीन Educational & Cultural Revolution न लाया हो लेकिन जब हम इल्म के बारे में दीन के इस हुक्म पर नज़र डालते हैं तो देखते हैं कि ख़ासकर इन आख़िरी सदियों में इस हुक्म को सिरे से भुला दिया गया है। ज़ाहिर सी बात है कि इसका रिज़ल्ट भी वही निकलना था जो आज हम देख रहे हैं। इसलिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि ऐसा क्यों हुआ ?

इस इस्लामी क़ानून को भुला दिए जाने की वजह

यह बात तो बिल्कुल तय है कि मुसलमान समाज में इस इस्लामी हुक्म को भुला देने की पहली वजह वह हुकूमतें थीं जो ख़िलाफ़त के सिस्टम पर बनी थीं जो कई सदियों तक चलती रहीं जिसकी वजह से मुसलमान समाज को बहुत सी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा था। इन्हीं हुकूमतों की वजह से मुस्लिम समाज तरह-तरह के ऐसे वर्गों या फ़िरक़ों में बंट गया था जिनका इस्लाम से दूर-दूर तक कोई जोड़ नहीं है। मुसलमान समाज में एक तरफ़ ग़रीब लोग थे जिनके पास अपना पेट भरने के लिए दो वक़्त की रोटी भी नहीं होती थी और दूसरी तरफ़ माल-दौलत के नशे में डूबे हुए लोग थे जिनके पास इतनी दौलत होती थी कि उनकी समझ ही में नहीं आता था कि अब इस दौलत का करें तो क्या करें ? जब समाज की आम ज़िंदगी में इस तरह की दरारें पड़ जाती हैं तो फिर इस तरह के क़ानूनों पर समाज चल ही नहीं पाता बल्कि ऐसी बातें भी जन्म ले लेती हैं जो किसी को क़ानून पर चलने ही नहीं देतीं।

इससे हटकर एक दूसरी वजह यह भी बताई जाती है कि पढ़ने-पढ़ाने पर इस्लाम की इतनी ज़्यादा नसीहतें और इतना कड़ा क़ानून इसलिए बेकार हो गया क्योंकि एक क़ानून की जगह दूसरे क़ानून को दे दी गई जैसे किसी बैंक में किसी का एकाउंट हो और हुकूमत उसकी वेल्यु को भी मानती हो लेकिन इस एकाउंट की वेल्यु किसी दूसरे एकाउंट को दे दी जाए।

इस बात के मानने वालों का कहना है कि इल्म के बारे में इस्लाम के इतने कड़े क़ानून को भुला देने की वजह यह है कि इस्लाम ने जो कुछ पढ़ने-लिखने के बारे में कहा था और जितना ज़ोर इल्म पर दिया था वह सब का सब आलिम या सिखाने वाले के नाम कर दिया गया और फिर उसकी इज़्ज़त करने को ही सब कुछ समझा जाने लगा। लोगों को करना तो यह था कि ख़ुद भी पढ़ें-लिखें और जितना हो सकता हो उतना अपने बच्चों को भी लिखना-पढ़ना सिखाएं लेकिन उनका सारा ध्यान उलमा और पढ़े-लिखे लोगों की इज़्ज़त पर लग गया। वह बस यह समझने लगे कि आलिम (ज्ञानी) की इज़्ज़त करने में ही सब कुछ है और इसी में सारा सवाब[1] है। रिज़ल्ट वही निकला जो आज हमारे सामने है।

यह बात कहीं न कहीं तक ठीक भी है क्योंकि हम ने माना कि उलमा और इस्लामी स्कॉलर्स ने ऐसा कुछ ग़लत नहीं कहा या लिखा है लेकिन फिर भी कुछ उलमा की बातें या किताबें एक तरह से असल रास्ते से हटी हुई दिखाई देती हैं। ख़ुद इस चीज़ ने भी इल्म के बारे में इस्लाम के इतने कड़े क़ानून की धार को कम करने में बहुत बड़ा रोल निभाया है।

जिस चीज़ की हम बात कर रहे हैं वह यह है कि उलमा का कोई भी ग्रुप हो वह बस इस बात पर डट गया है कि जिस इल्म का हुक्म अल्लाह के रसूल[स०] दे गए हैं वह वही इल्म है जो हमारे पास है।

---

[1] पुण्य

कौन सा इल्म?

मशहूर आलिम फ़ैज़ काशानी ने अपनी किताब *मोहज्जतुल बैज़ा* में लिखा है कि इस्लामी फ़िलास्फ़र ग़ज़ाली कहते हैं कि इस हदीस के मतलब के बारे में उलमा के बीच 20 ग्रुप बन गए हैं और इन में से हर ग्रुप एक ख़ास इल्म को मानने वाला है। हर ग्रुप के उलमा का कहना है कि इस हदीस में जिस इल्म की बात की गई है वह हमारा वाला ही इल्म है। Theology वालों का कहना है कि अल्लाह के रसूल[स०] की हदीस ''इल्म का सीखना हर मुसलमान पर वाजिब है'' का मतलब Theology है क्योंकि Theology ही *उसूले दीन* का इल्म है। अख़लाक़[1] के उलमा का दावा है कि यह हदीस अख़लाक़ को सीखने का हुक्म दे रही है ताकि आदमी जान सके कि कौन-कौन सी अच्छाईयाँ उसे कामयाबी की तरफ़ ले जाने वाली हैं और कौन-कौन सी बुराईयाँ उसे बर्बाद करने वाली हैं। फ़ुक़हा (Experts of Jurisprudence) का मानना है कि यह हदीस दीनी अहकाम के बारे में बात कर रही है क्योंकि हर मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि या तो वह ख़ुद मुजतहिद (Expert of Jurisprudence) हो या किसी मुजतहिद की तक़लीद करता हो। क़ुरआन की तफ़सीर करने वाले कहते हैं कि यह इल्म क़ुरआन की तफ़सीर का इल्म है क्योंकि तफ़सीर का इल्म अल्लाह की किताब 'क़ुरआन' के बारे में होता है। मोहद्देसीन (हदीसें लिखने वाले) कहते हैं कि यह इल्म हदीस (Traditions) का इल्म है क्योंकि किसी भी चीज़ को यहाँ तक कि क़ुरआन को भी सिर्फ़ हदीसों से ही समझा जा सकता है। सूफ़ियों (Mystics) का मानना है कि यह हदीस इरफ़ान (Mysticism) के बारे में बात कर रही है... वग़ैरा-वग़ैरा।

इसके बाद मरहूम फ़ैज़ काशानी अपनी बात को भी सामने रखते हैं। वैसे उनकी बात भी पूरी तरह से तो नहीं लेकिन

---

[1] सदाचार

काफ़ी हद तक सही है। उनका कहना है कि अगर अल्लाह के रसूल[स०] इन में किसी एक इल्म के बारे में बात कर रहे होते तो साफ़-साफ़ उस इल्म का नाम ले लेते जैसे *Theology* या *Ethics* या *Jurisprudence* या *Traditions*। इसलिए यह फ़ैसला हमें ही करना है कि इस्लाम के लिए वाजिबे ऐनी[1] या वाजिबे किफ़ाई[2] के हिसाब से कौन सी चीज़ ज़रूरी और वाजिब है? अब जो भी इल्म इस इस्लामी ड्युटी को पूरा कर सकता हो उसी इल्म का सीखना वाजिब हो जाएगा।

इस्लाम कैसा समाज बनाना चाहता है?

यहाँ तक आने के बाद कुछ दूसरी बातों पर ध्यान देना भी बहुत ज़रूरी है। एक यह कि इस्लाम कैसा समाज चाहता है? सामने की बात है कि इस्लाम एक आज़ाद, इंडिपेंडेंट और सर उठाकर जीने वाला समाज चाहता है। इस्लाम कभी यह नहीं चाहता कि मुस्लिम समाज किसी ग़ैर-मुस्लिम समाज का भिकारी और उसके टुकड़ों पर पलने वाला हो। इस बारे में अल्लाह ने सूरए निसा की आयत/141 में अपना खुला हुक्म हमें इस तरह सुना दिया हैः

> अल्लाह ईमान वालों के ख़िलाफ़ काफ़िरों को कोई रास्ता नहीं दे सकता।

अल्लाह को यह बात बिल्कुल पसंद नहीं है कि मुसलमानों के ऊपर ग़ैर-मुस्लिमों का कंट्रोल हो। इस्लाम को यह चीज़ बिल्कुल पसंद नहीं है कि एक मुसलमान समाज दूसरों के टुकड़ों पर पल रहा हो या उन से ऐसा क़र्ज़ या ऐसी मदद ले ले जिसको बाद में वापस ही न करना पड़े। इस्लाम कभी नहीं चाहता कि मुस्लिम समाज माली या समाजी तौर पर आज़ाद न हो। इस्लाम को तो यह भी पसंद नहीं है कि अगर मुसलमान

---

[1] ऐसा हुक्म जिसे पूरा करना हर एक पर वाजिब हो
[2] ऐसा हुक्म कि अगर कोई एक पूरा कर दे तो दूसरों पर पूरा करना वाजिब न हो

किसी ख़तरनाक बीमारी का शिकार हो जाएं तो उस बीमारी के इलाज के लिए उन्हें अच्छे डाक्टर या सही इलाज के न होने की वजह से अपने मरीज़ों को अपने कंधों पर लाद कर दूसरों के पास ले जाना पड़े। इस्लाम चाहता है कि मुसलमान समाज इतना तरक़्क़ी कर चुका हो कि वह अपना इलाज ख़ुद ही कर ले। इलाज के लिए किसी के दरवाज़े पर न जाए।

यह थी पहली बात और पहला फ़ार्मूला जिस पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है।

इल्म, आज़ादी और इज़्ज़त की माँ है

दूसरा फ़ार्मूला यह है कि आज हमारी इस दुनिया में जितनी भी तरक़्क़ी हुई है या जो कुछ भी बदलाव आ रहे हैं वह सब के सब इल्म की वजह से ही हैं। आज हमारी ज़िंदगी चारों तरफ़ से इल्म से जुड़ी हुई है और वह भी इस तरह से कि अब हमारा कोई भी काम इल्म की चाबी के बिना पूरा हो ही नहीं सकता।

इल्म हर ज़िम्मेदारी को पूरा करने की चाबी भी है

तीसरा फ़ार्मूला यह है कि इस्लाम की हर निजी या समाजी ड्युटी इल्म से जुड़ी हुई है। इल्म का सीखना एक ऐसा काम है जिसे इस्लाम के दूसरे सारे कामों को पूरा करने की चाबी माना गया है। अब अगर मुसलमानों और मुस्लिम समाज का ढाँचा कुछ ऐसा हो जाए कि उसे इल्म की और ज़्यादा ज़रूरत हो तो इल्म के सीखने की अहमियत[1] और बढ़ जाएगी। इसलिए इल्म को फैलाना और सब लोगों तक पहुँचाना भी और ज़रूरी हो जाएगा।

---

[1] महत्व

रिज़ल्ट

ऊपर की इन तीनों बातों से यह रिज़ल्ट निकलता है कि हर मुसलमान की इस्लामी ड्युटी है कि वह इल्म की तरफ़ सरपट दौड़ता चला जाए और आम जानकारियों को हर मुसलमान के लिए वाजिब समझा जाए।

दीनी इल्म और ग़ैर–दीनी इल्म

(Religious & Non-Religious Knowledge)

आमतौर पर हम लोग कुछ उलूम (विषयों) को दीनी और कुछ को ग़ैर–दीनी कहने लगे हैं। दीनी इल्म वह है जो दीन के Theological, Moral and Practical मामलों से सीधे जुड़ा हुआ है या फिर वह इल्म है जिसका जानना Islamic Practical Laws and Religious Teachings को समझने के लिए ज़रूरी है जैसे अरबी लिट्रेचर या लॉजिक।

हो सकता है कि कुछ लोग यह भी सोचने लगें कि इसका मतलब यह है कि बचे हुए दूसरे किसी भी इल्म का दीन से कोई रिश्ता–नाता नहीं है और इस्लाम ने इल्म के बारे में जितना भी ज़ोर दिया है या सवाब[1] बताया है वह बस Islamic Sciences के बारे में है। या अगर रसूले इस्लाम[स०] ने इल्म को वाजिब बताया है तो बस Islamic Sciences के बारे में वाजिब कहा है।

जबकि सच्चाई यह नहीं है क्योंकि ‘‘दीनी उलूम’’ या Islamic Sciences सिर्फ़ एक लफ़्ज़ है और इससे हटकर कुछ भी नहीं है। अगर ऐसे देखा जाए तो फिर दीनी इल्म सिर्फ़ क़ुरआन और हदीस ही है। जब शुरू–शुरू में इस्लाम आया था तो उस वक़्त दूसरी हर चीज़ से पहले इन्हीं दो चीज़ों का

---

[1] पुण्य

सीखना हर मुसलमान पर वाजिब था। उस वक़्त न Theology नाम का कोई इल्म था, न फ़िक़्ह (Jurisprudence) नाम का कोई इल्म, न लॉजिक और न इस्लामी फ़िलास्फ़ी, न इस्लामी इतिहास और न ही कोई दूसरा इल्म।

अल्लाह के रसूल[स०] की एक हदीस कुछ यूँ हैः

> क़ुरआन की आयतों व हदीसों को समझने का नाम ही इल्म है।[1]

यह हदीस सिर्फ़ उस वक़्त के मुसलमानों और उस वक़्त के हालात के बारे में है लेकिन बाद में जब मुसलमानों ने इस्लाम के बुनियादी क़ानून यानी क़ुरआन व हदीस को समझ लिया और फिर क़ुरआन व हदीस के हुक्म के हिसाब से इल्म के वाजिब होने को भी मान लिया तो फिर धीरे-धीरे दूसरे सब्जेक्ट भी तैयार होने लगे। अब इस तरह से देखा जाए तो हर उस इल्म का सीखना वाजिब है जिसमें मुसलमानों की भलाई हो और जो उनकी मुसीबतों को दूर कर रहा हो। सवाल यह है कि हम अरबी लिट्रेचर और लॉजिक को दीनी इल्म क्यों मानते हैं? इसकी वजह बस इतनी सी है कि इन दोनों से हमें वही फ़ाएदा मिलता है जो इस्लाम चाहता है।

इम-र-उल क़ैस और *ख़म्री अबू नवास* जैसे बड़े-बड़े अरबी शायरों की शायरी मदरसों में क्यों पढ़ाई जाती है? वजह साफ़ है कि हमें उनकी शायरी को पढ़कर क़ुरआन को समझने में आसानी होती है।

इसका मतलब यह हुआ कि जो इल्म इस्लाम व मुसलमानों की भलाई में हो उसी को दीनी इल्म मानना चाहिए और अगर कोई सच्ची नियत के साथ और इस्लाम व मुसलमानों की भलाई के लिए उस इल्म को सीखे तो उसको वह सवाब[2] ज़रूर मिलेगा जिसका वादा किया गया है जैसे कि इस हदीस में हैः

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 1, पेज. 32

[2] पुण्य

> फ़रिश्ते तालिबे इल्मों (Students) के पैरों के नीचे अपने पर बिछा देते हैं।[1]

लेकिन अगर नियत सच्ची न हो तो किसी भी इल्म के सीखने का कोई सवाब नहीं है चाहे इन्सान क़ुरआन की आयतों को ही क्यों न सीख रहा हो।

सही बात तो यह है कि इल्म के दो टुकड़े करना ही ग़लत है यानी एक दीनी इल्म और दूसरा ग़ैर-दीनी इल्म। इसी वजह से कुछ लोगों के दिमाग़ में यह कीड़ा भी रेंग जाता है कि ऐसा इल्म जिसे ग़ैर-दीनी कहा जाता है उसका इस्लाम से कोई रिश्ता नहीं है। इस्लाम एक ऐसा धर्म है जिसके पास हर सवाल और हर मुश्किल का हल है। इस्लाम एक ऐसा दीन भी है जो अल्लाह का भेजा हुआ आख़िरी दीन है। यह दोनों बातें ही इस बात का सुबूत हैं कि हर वह इल्म जो इस्लामी समाज की भलाई में हो उसे हमें दीनी इल्म ही मानना पड़ेगा।

औरतों का पढ़ना-लिखना

लिखना-पढ़ना सिर्फ़ मर्दों पर ही वाजिब नहीं है बल्कि औरतों पर भी वाजिब है क्योंकि अल्लाह के रसूल[स०] ने फ़रमाया हैः

> इल्म हर मुसलमान पर वाजिब है।

इस हदीस में ''मुस्लिम'' शब्द आया है जो Masculine Gender है जिससे यह शक पैदा हो जाता है कि क्या इल्म सीखना सिर्फ़ मर्दों का ही काम है?

पहली बात तो यह है कि शिया उलमा की कुछ किताबों में इस हदीस के अंदर 'मुस्लिम' के साथ 'मुस्लिमा' शब्द यानी मुसलमान औरत भी आया है।

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 1, पेज. 34

दूसरी बात यह है कि इस तरह के शब्दों से कोई एक Gender नहीं लिया जाता। ''मुस्लिम'' यानी मुसलमान, चाहे मर्द हो या औरत। जहाँ-जहाँ भी इस तरह के शब्द आते हैं वहाँ-वहाँ इसी तरह का मतलब लिया जाता है।

ज़ाहिर सी बात है कि इस हदीस का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि बस मुसलमान मर्दों को लिखना-पढ़ना चाहिए बल्कि इस हदीस में औरतें भी आती हैं।

या एक दूसरी हदीस हैः

मुसलमान, मुसलमान का भाई होता है।[1]

इस हदीस में भी बस इतना ही कहा गया है कि मुसलमान, मुसलमान का भाई होता है। यह नहीं कहा गया है कि मुसलमान औरत भी मुसलमान औरत की बहन होती है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह हदीस बस मर्दों के बारे में है।

''मुस्लिम'' शब्द के अंदर दो मायनी छुपे हुए हैंः एक मुसलमान होना और दूसरे मर्द होना। यह बात सभी जानते हैं कि इस तरह की जगहों पर मर्द या औरत होने का कोई मतलब नहीं बनता है बल्कि असल चीज़ मुसलमान होना है। यहाँ तक कि अगर *मुस्लिम* (मुसलमान) शब्द के बजाए *रजुल* (मर्द) शब्द भी आ जाए तब भी मर्द-औरत दोनों को गिना जाएगा। जैसे कुछ हदीसों में अहकाम के बारे में बात की गई है और बस मर्दों का नाम लिया गया है। जैसे एक हदीस में है कि इमाम से सवाल किया गया कि एक आदमी ने ऐसा किया और ऐसा हो गया, अब वह क्या करे? इमाम ने भी जो जवाब देना था वह दे दिया लेकिन उलमा कहते हैं कि ठीक है कि हदीस में साफ़-साफ़ मर्द ही कहा गया है लेकिन इस तरह की जगहों पर मर्द-औरत दोनों के बारे में बात की जा रही होती है।

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 2, पेज. 166

तीसरी बात यह है कि इन सारी बातों से हटकर उलमा एक फ़ार्मूला और बताते हैं कि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको बांधा ही नहीं जा सकता। इन शब्दों को इस्तेमाल करने का तरीक़ा भी ऐसा होता है कि यह शब्द अपने असली मायनी को तोड़कर अपने आप बाहर निकल जाते हैं। सामने वाला ऐसी बात कह रहा होता है कि हमारी अक़्ल भी इन शब्दों के मायनी को फैलने से नहीं रोक पाती जैसे क़ुरआन में इल्म या तक़्वा (Piousness) के बारे में इसी तरह बात की गई है। इल्म के बारे में सूरए ज़ुमर/9 में हैः

> क्या जानने वाले, न जानने वालों के बराबर हो जाएंगे? इस बात को सिर्फ़ अक़्ल वाले ही समझते हैं कि बराबर नहीं हो सकते।

तक़्वा के बारे में सूरए साद/28 में हैः

> क्या हम ईमान लाने वालों और अच्छे काम करने वालों को ज़मीन में फ़साद (बुराई) फैलाने वालों जैसा मान लें या तक़्वा वालों को फ़ासिक़ों-फ़ाजिरों (खुले आम गुनाह करने वालों) जैसा मान लें?

सूरए हुजुरात/13 में हैः

> तुम में से अल्लाह के यहाँ ज़्यादा इज़्ज़त वाला वही है जो ज़्यादा परहेज़गार (Pious) है।

इन सारी आयतों में Masculine Gender का इस्तेमाल हुआ है। अब क्या हम कह सकते हैं कि इन आयतों में Masculine Gender आया है इसलिए इस तरह की सारी आयतें मर्दों के बारे में हैं, इनका औरतों से कोई मतलब नहीं है? क्या हम कह सकते हैं कि तक़्वा के बारे में जो बात कही गई है वह तो बस मर्दों के बारे में हैं, उसका औरतों से क्या मतलब?

इस्लाम इल्म को नूर मानता है और जिहालत को अंधेरा। इल्म को रौशनी मानता है और जिहालत को अंधापन। तभी तो सूरए राद की आयत/16 में हैः

> क्या अंधे और आँखों वाले एक जैसे हो सकते हैं या रौशनी और अंधेरा बराबर हो सकता है?

इसके बाद इस्लाम एलान करता हैः

> इल्म सीखना हर मुसलमान पर वाजिब है।

यही इल्म जो रौशनी और नूर है यह हर मुसलमान पर वाजिब है। क्या कोई कह सकता है कि इस्लाम बस मर्दों को ही अंधेरे से बाहर निकाल कर रौशनी की तरफ़ लाना चाहता है, औरतें वहीं अंधेरे में ही रहें? बिल्कुल नहीं।

सूरए ज़ुमर की आयत/9 में आगे चलकर फ़ौरन ही अल्लाह फ़रमाता हैः

> अक़्ल वाले और समझदार लोग ख़ुद ही इस बात को समझ लेंगे।

असल में क़ुरआन कहना यह चाहता है कि यह इतनी सामने की बात है कि हर एक आसानी से अपने आप समझ लेगा। इस में कुछ समझाने की ज़रूरत ही नहीं है।

सूरए जुमा की आयत/2 में अल्लाह के रसूल[स०] के बारे में क़ुरआन फ़रमाता हैः

> उस अल्लाह ने मक्के वालों में एक रसूल भेजा है जो उन्हीं में से है ताकि वह उनके सामने क़ुरआन की आयतें पढ़े, उनकी रूह[1] को पाक बनाए और उन्हें किताब व हिकमत (Wisdom) सिखाए।

इस आयत में तक़्वा व इल्म एक साथ आए हैं और दोनों के लिए Masculine Gender इस्तेमाल हुआ है। अब अगर इस आयत में मर्दों के तक़्वा की बात की गई होती तो तालीम के लिए भी कहा जा सकता था कि यह भी बस मर्दों का ही काम है और अगर हम ऐसा नहीं कह सकते तो मानना पड़ेगा कि इस्लाम में तक़्वा और पढ़ना-लिखना, मर्दों-औरतों दोनों ही के लिए है।

---

[1] आत्मा

गुनाहगार कौन है?

अब इसके बाद हो सकता है कि कुछ लोग कहने लगें कि आख़िर आप कहना क्या चाहते हैं? क्या हमारी लड़कियाँ भी इन्हीं स्कूलों व कॉलेजों में जाएं? इसी कल्चर में पढ़ें-लिखें?

अगर एजुकेश्नल सिस्टम में दीनी हिसाब से रूकावटें हैं तो भी इसके लिए हम ही ज़िम्मेदार हैं क्योंकि हम अपने अंदर इस सिस्टम को बदलने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाए हैं। इस्लाम ने अगर पढ़ने-पढ़ाने को ज़रूरी बताया है तो इस ज़रूरी काम को पूरा करने के लिए जिस-जिस चीज़ की ज़रूरत पड़ेगी उसे भी जुटाना होगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि हम अपने घर के अंदर बैठे रहें और कहते रहें कि हम तो अपनी लड़कियों को पढ़ाई के लिए उस वक़्त भेजेंगे जब स्कूल-कॉलेज पूरी तरह से इस्लामी हो जाएंगे।

अच्छे-अच्छे स्कूल-कॉलेज बनाना भी हमारी ही ड्युटी है और अच्छा सिस्टम या कल्चर तैयार करना भी हमारा ही काम है। सही बात तो यह है कि अगर किसी ने अपनी पूरी ज़िंदगी में कभी भी इन हालात को बदलने, स्कूल-कॉलेज खोलने यानी इल्म के बारे में इस्लाम के इस बुनियादी फ़ार्मूले को लागू करने और कल्चर को अच्छा बनाने में ज़रा सी भी कोशिश न की हो तो उसे आज के इन हालात को बुरा कहने का ज़रा सा भी हक़ नहीं पहुँचता। समाज में कमियाँ तभी जन्म लेती हैं जब बस बोलने वाले हर जगह बोलते तो रहते हैं लेकिन अपनी इस्लामी ड्युटी को पूरा करने के लिए कुछ भी नहीं करते।

यहाँ ध्यान देने वाली एक बात यह भी है कि अब जबकि हर सब्जेक्ट की अलग-अलग ब्रांच भी बन गई है और हर मैदान में स्पेशलाइज़ेशन हो रहा है तो लड़कियों को भी पढ़ने या कॅरियर बनाने के लिए वह सब्जेक्ट चुनना चाहिए जो उनकी सलाहियतों[1], उनके मिज़ाज और उनकी पर्सनालिटी से मैच करते हों और जो समाज के काम भी आने वाले हों।

---

[1] Skills

क्या कोई कह सकता है कि समाज को लेडी डाक्टरों या लेडी सर्जनों की ज़रूरत नहीं है? क्या कोई ऐसा घर मिलेगा जिसमें औरतों की ख़ास बीमारियों में लेडी डाक्टरों की ज़रूरत न पड़ती हो?

बड़ी अजीब सी बात है कि जब लड़कियों की एजुकेशन की बात आती है तो कुछ लोग बीच में आकर खड़े हो जाते हैं लेकिन जैसे ही उनके घरों की औरतों या लड़कियों को कोई ख़ास बीमारी हो जाती है तो फ़ौरन दूसरे मर्दों, यहाँ तक कि काफ़िर मर्दों तक को दिखाने को तैयार हो जाते हैं।

पवित्र जिहाद

जो कुछ ऊपर कहा गया है उसका निचोड़ यह है कि आज सबसे बड़ा वाजिब काम मुसलमान समाज के एक-एक कोने तक इल्म की रौशनी को फैलाना है। यह काम अकेले Cultural Bodies का नहीं है बल्कि यह हर मुसलमान की ड्युटी है। जो भी मुसलमान होने का दावा करता है यह काम उस की ड्युटी है, चाहे वह हुकूमत में हो या आम लोगों में। यह काम एक पवित्र जिहाद में बदल जाना चाहिए और अगर यह काम दीन का हुक्म मानते हुए किया जाए तो इस पर दीन का रंग भी चढ़ा हुआ होना चाहिए। सब से पहले उलमा को आगे आना चाहिए कि वह इल्म के इस झंडे को लेकर आगे बढ़ें। उधर से लोगों को भी इल्म और इल्म वाली जगहों से नहीं घबराना चाहिए कि अगर इल्म आ गया तो दीन चला जाएगा। यह तो इस्लाम के बारे में खुल्लम-खुल्ला ग़लत सोचना हुआ। इस्लाम तो ऐसा धर्म है जो जिहालत के अंधेरों में फैलने के बजाए एजुकेशनल कल्चर में कहीं ज़्यादा तेज़ी से फैलता है। अगर हमें पता होता कि जिहालत की वजह से हमारे और इस्लाम के ऊपर कौन-कौन सी मुसीबतें आ रही हैं तो हम जिहालत से डरकर कोसों दूर भागा करते, न कि इल्म से।

बहरहाल अगर हम एक सही दीन चाहते हैं, अगर ग़रीबी से आज़ाद होना चाहते हैं, अगर बीमारियों से बचना चाहते हैं, अगर हम समाज में हर जगह इंसाफ़ देखना चाहते हैं, अगर हम समाज में बदलाव लाना चाहते हैं और अगर हम असली डेमॉक्रेसी चाहते हैं तो इसका बस एक ही रास्ता है और वह है इल्म। फिर इल्म भी ऐसा इल्म जो हर जगह फैला हुआ हो, दीन की जड़ों से निकला हो और जो एक पवित्र जिहाद बन गया हो।

अगर हम ने इस पवित्र जिहाद को शुरू नहीं किया तो दुनिया के दूसरे लोग यह काम कर लेंगे और फिर इस का फ़ाएदा भी उन्हीं को मिलेगा यानी दूसरे आएंगे और आकर हमें मुसीबतों से बचाएंगे। बस उस वक़्त हमारा अल्लाह ही मालिक है। हमारी इस ग़लती से इस्लाम को कितना नुक़सान पहुँचेगा यह तो बस अल्लाह ही जानता है।

जिहालत से जंग

युनेस्को ने एक किताब *जिहालत से जंग*[1] छापी है। युनेस्को, यू. एन. ओ का ही एक आर्गेनाइज़ेशन है। इस किताब में दुनिया भर के पिछड़े मुल्कों में एजुकेशन और लिखने-पढ़ने के लिए इस आर्गेनाइज़ेशन ने जो काम किए हैं उनके बारे में बताया गया है। बहरहाल एक तरफ़ तो ख़ुशी की बात यह है कि चलो! अब तो कम से कम मुसलमानों के बीच एजुकेशन फैलने जा रही है और धीरे-धीरे सारे अनपढ़ों को पढ़ना-लिखना आ जाएगा लेकिन दूसरी तरफ़ दुख की बात यह है कि हम मुसलमान अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में कितना पीछे रह जाते हैं कि सात समुंदर पार से हज़ारों तरह की मुसीबतें झेल कर और पैसा ख़र्च करके दूसरे यहाँ आते हैं

---

[1] यह किताब अब से 18 साल पहले लिखी गई थी। शहीद मुतह्हरी की समझ-बूझ देखिए कि उस वक़्त उनकी कही बातें आज बिल्कुल सही साबित हो रही हैं।

और यह काम करते हैं। यह लोग सिर्फ़ एजुकेशन पर ही काम नहीं करते बल्कि हेल्थ और आम ज़िंदगी से जुड़े दूसरे कई तरह के प्रोजेक्ट भी शुरू करते हैं, आम लोगों की मदद करते हैं, मरीज़ों की देखभाल और उनका इलाज भी करते हैं।

इन लोगों ने युरोप से बहुत दूर के देशों जैसे पाकिस्तान व अफ़ग़ानिस्तान वग़ैरा में जाकर भी अपने प्रोजेक्ट शुरू किए हैं और वहाँ भी लोगों की एजुकेशन व हेल्थ पर काम किया है जबकि हम मुसलमानों में से कोई भी इन देशों में इस तरह के प्रोजक्ट लेकर नहीं गया है और अगर गया भी है तो बस दौलत कमाने के लिए, न कि सर्विस देने के लिए।

इस किताब के हिसाब से कुछ साल पहले तक कुछ इस्लामी देशों में क़रीब 98% अनपढ़ थे। अब यह हालत काफ़ी बेहतर हो गई है और गिरकर 80% तक आ गई है। दो साल पहले युनेस्को के एशियाई देशों के Representatives की कराची में एक कांफ्रेस हुई थी जिसमें एशियाई मुल्कों में लोगों को पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए अगले बीस साल का रोड-मैप तैयार किया गया है। यह रोड-मैप बड़ी मेहनत व लगन से बनाया गया है जो बड़े सटीक आंकड़ों वाला और बड़ा सिस्टमेटिक है। साथ ही इस में सारे रिसोर्सेस को अच्छे ढंग से इस्तेमाल करने की कोशिश भी की गई है। इस आर्गेनाइज़ेशन की सब से बड़ी कामयाबी यह है कि इस ने समाज के आम लोगों के अंदर भी पढ़ने-लिखने का शौक़ उभार दिया है। इसी किताब में लिखा हुआ था कि युनेस्को के एजुकेशनल प्रोजेक्ट के तहत कभी-कभी तो ऐसे बूढ़े भी दिखाई पड़ते थे जिनकी दाढ़ियाँ सीनों तक होती थीं और यह बूढ़े अपने बच्चों व पौते-पौतियों के साथ एक ही क्लास में बैठते थे।

सात समुंदर पार से यहाँ आकर हमारी पब्लिक को पढ़ाने-लिखाने के पीछे उनकी क्या सोच और क्या प्लान है यह तो वही जानते होंगे। हो सकता है कि इस तरह के प्रोजेक्ट के पीछे भी उनकी वही पुरानी सोच हो यानी दूसरे मुल्कों को अपना ग़ुलाम बनाना। अगर सच में ऐसा ही है कि दुश्मन इस

तरह की चालों से हमारे मुक़ाबले में आया है तो फिर अब अल्लाह ही मालिक है। उनके दिल में जो भी प्लान हो लेकिन हम उनके बारे में ग़लत सोचकर अपनी कमियों पर पर्दा नहीं डाल सकते। हम मुसलमानों की आदत कुछ ऐसी ही पड़ गई है कि हम दूसरों के कामों में कमियाँ और बुराईयाँ निकालकर अपनी कमियों को छुपाना चाहते हैं।

इस किताब में यह भी लिखा हुआ था कि एक अफ़्रीक़ी देश में एक कट्टरपंथी बूढ़े ने तो कह भी दिया था कि तुम युरोप वालों को इस बात का एहसास हो गया है कि तुम्हारी ताक़त अब कमज़ोर पड़ने लगी है इसलिए अब तुम हमारे यहाँ समाजी कामों और सोशल सर्विस के बहाने से आ धमके हो।

इस बात से कुछ भी फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह यहाँ क्या और कौन सा प्रोजेक्ट लेकर आए हैं। हमारे लिए समझने की ख़ास बात यह है कि अगर वह इस रास्ते पर चलकर कामयाब हो गए और अगले बीस सालों तक मुस्लिम मुल्कों में इसी तरह से एजुकेशन का झंडा लहराते रहे, उन्हें लिखाते-पढ़ाते रहे और जिहालत, ग़रीबी व बीमारियों से बचाते रहे तो इस्लाम व मुसलमानों के बारे में हमारी अगली पीढ़ी की सोच क्या बन जाएगी? क्या बीस साल बाद आने वाली पीढ़ियाँ नहीं कहेंगी कि हम 1400 साल से मुसलमान थे और मोहम्मद[स०] के दीन पर चल रहे थे लेकिन जिहालत और ज़िल्लत (Humiliation) से हटकर और क्या मिला? अब देखो! ईसा मसीह के मानने वाले दुनिया के उस कोने से उठकर आए हैं और उन्होंने हमें जिहालत व ज़िल्लत से बाहर निकाला है।

इसके बाद इस्लाम की क्या इज़्ज़त रह जाएगी? अगर अल्लाह के रसूल[स०] ने सवाल कर लिया कि मैं तो तुम से पहले ही कहकर गया था कि ''इल्म हर मुसलमान पर वाजिब है'', फिर तुम ने क्या किया तो हमारे पास इस बात का क्या जवाब होगा?

एक बड़ा सटीक समाजी मुहावरा पहले ही से बना हुआ है कि ''आदमी एहसान का ग़ुलाम होता है''।

रसूले इस्लाम[स०] ने भी फ़रमाया हैः

> जो भी बंजर ज़मीन को उपजाऊ बना ले वह ज़मीन उसकी हो जाती है।

यूँ तो यह हदीस इस्लामी शरीअत के एक क़ानून के बारे में है जो ज़मीन से जुड़ा हुआ क़ानून है लेकिन आम ज़िंदगी में भी यही क़ानून लागू होता है।

कोई भी समाज हो अगर उसने दूसरे किसी भी मुर्दा समाज में जान डाल दी और उस समाज की जिहालत, ग़रीबी व मुसीबतों को दूर कर दिया तो वह उस समाज के दिल, उसकी रूह, उसकी सोच और उसकी आस्था का मालिक बन जाता है।

हमें अभी से इस आने वाले ख़तरे को भाँप लेना चाहिए और ऐसी कोशिशें करना चाहिएं कि अगले बीस सालों बाद यह हालत बन ही न पाएं।

हो सकता है कि कुछ लोग यह भी कहते दिखाई पड़ें कि कुछ भी हो जाए लेकिन हम मुसलमान, ईसाई धर्म को नहीं अपना सकते, ख़ासकर अगर लोग पढ़-लिख जाएं और तौहीद को समझ लें तब तो ईसाईयों के तीन ख़ुदाओं वाले अक़ीदे को सिरे से मान ही नहीं सकते।

शायद ऐसा ही हो लेकिन इतना तो तय है कि अगर मुसलमान पलट कर वापस ईसाई धर्म की तरफ़ नहीं गए तो कम से कम इस्लाम से भी उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं रह जाएगी। हो सकता है कि इन सारे कामों का फ़ाएदा कम्युनिस्टों को मिल जाए। अगर मुस्लिम मुल्कों में किसी भी वजह से मुसलमान नौजवानों की दीन से दिलचस्पी ख़त्म हो गई तो इस का फ़ाएदा फिर कम्युनिज़्म को ही मिलेगा।

इसलिए इस ख़तरे का मुक़ाबला किया जाना चाहिए लेकिन इस ख़तरे से लड़ने का फ़ार्मूला है क्या?

क्या इसका फ़ार्मूला यह है कि हम हमेशा की तरह अपना निगेटिव रोल ही निभाते रहें और चीख़ते-चिल्लाते रहें कि युनेस्को का यह काम बिल्कुल नहीं है कि वह मुसलमानों को पढ़ाने-लिखाने में लग जाए, उनके लिए मुसीबतें उठाए या पैसा

ख़र्च करे। यू. एन. ओ. के किसी भी आर्गेनाइज़ेशन को कोई हक़ नहीं है कि वह हमारे यहाँ आकर मलेरिया या इस तरह की दूसरी बीमारियों की रोकथाम करे। उन से हमारे मामलों का क्या लेना-देना?

क्या इस तरह की बातें करना ठीक है? क्या दुनिया वाले हमारी इन बातों को मान लेंगे? क्या ख़ुद मुसलमान समाज इन बातों को मान लेगा?

या फिर इसका रास्ता यह है कि हम ख़ुद अपनी कमर कस लें, अपने अंदर हिम्मत व ताक़त पैदा करें और फिर एक पवित्र जिहाद शुरू करके इस दीनी काम को ख़ुद ही पूरा करें।

ज़ाहिर सी बात है कि यही दूसरा वाला रास्ता ही ठीक है और यही इस मसले का हल है।

इसी किताब में लिखा हुआ था कि इंडोनेशिया जो कि एक मुस्लिम मुल्क है और सब से बड़ा इस्लामी मुल्क है, वहाँ पूरे मुल्क में एजुकेशन एक पवित्र जिहाद बन गया है। अब वहाँ लोग इस काम को एक दीनी काम और इस्लामी हुक्म समझकर पूरा कर रहे हैं। वहाँ आमतौर पर लोग यह करते हैं कि जिस किसी को भी किसी सब्जेक्ट के बारे में कोई जानकारी होती है वह अपनी ड्युटी समझकर किसी स्कूल-कॉलेज में जाता है और वहाँ जाकर पढ़ाता है क्योंकि प्रोफ़ेशनल टीचर्स स्कूल-कॉलेज की एजुकेशनल डिमांड को पूरा नहीं कर पाते।

यह वही इस्लामी हुक्म है जिसमें इल्म सीखने को हर मुसलमान पर वाजिब कर दिया गया है। इस इस्लामी हुक्म की प्रेक्टिकल शक्ल अगर देखना है तो फिर यही है जो इंडोनेशिया में लागू है।

सोशल सर्विस और अच्छे कामों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का शौक़

अल्लाह ने सूरए माएदा की आयत/48 में क़ुरआन और दूसरी आसमानी किताबों के बारे में बताने के बाद पिछले धर्मों की तरफ़ इशारा किया हैः

> हम ने सब के लिए अलग-अलग शरीअत और रास्ता तय कर दिया है और अल्लाह चाहता तो सब को एक ही उम्मत (क़ौम) बना देता लेकिन वह अपने बनाए हुए क़ानून से तुम्हें आज़माना चाहता है।
>
> इसलिए तुम सब अच्छे कामों में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाओ।

शायद यह आयत भी दूसरी आयतों की तरह अल्लाह की तरफ़ से अलग-अलग समाज बनाए जाने के फ़ाएदों की तरफ़ हमारा ध्यान खींच रही है। इस आयत से यह मतलब भी निकाला जा सकता है कि अलग-अलग क़ौमों व समाजों के होने में एक भलाई यह भी है कि जब अलग-अलग समाज व क़ौमें होंगी तो उनके बीच अच्छे कामों में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने का शौक़ भी पैदा होगा जिससे उनका इम्तेहान भी हो जाएगा और उनकी सलाहियतें (Skills) भी निखर कर बाहर आ जाएंगी। अब जो क़ौम भी ज़्यादा बढ़-चढ़ कर मुक़ाबला करेगी वही मैदान जीत लेगी।

इसके बाद आयत मुसलमानों से कहती है कि ऐ मुसलमानो! लम्बे-लम्बे क़दम उठाओ और इस मुक़ाबले को जीत लो।

इसलिए इस ख़तरे से मुक़ाबले का रास्ता यह नहीं है कि हम युनेस्को को कुछ न करने दें बल्कि इस ख़तरे से बचने का रास्ता यह है कि इस काम को हम ख़ुद ही अपने हाथों में ले लें लेकिन ध्यान रहे कि जब तक यह काम पवित्र समझकर नहीं किया जाएगा और जब तक उलमा आगे नहीं आएंगे और

इस काम को दूसरे हर काम से वाजिब नहीं मानेंगे तब तक कुछ भी नहीं होने वाला।

यह काम स्कूलों से शुरू होना चाहिए जो इस पूरे प्रोजेक्ट की जान है। फिर जैसे ही मुसलमान इस स्टेज पर कंट्रोल पा लें, फ़ौरन अगली स्टेज की तरफ़ बढ़ जाएं यानी फिर कॉलेज वग़ैरा का नम्बर आएगा। अगली स्टेज इन्हीं स्कूलों व कॉलेजों से निकलने वाले रिसर्च स्कॉलर्स, एक्सपर्ट्स और थिंकर्स को दुनिया के सामने लाने की आएगी।

इस्लाम ने इल्म के बारे में जो कुछ कहा है वह अपनी जगह सब कुछ सही है लेकिन बस इल्म का ढिंढोरा पीटने और प्रोपेगंडा करने से कुछ नहीं होने वाला। हमें मुस्लिम समाज के लिए प्रक्टिकल एप्रोच अपनाना होगी, तभी कुछ हो सकता है। अगर हम ने अपने पूरे समाज के साथ इस दीनी काम को अपने हाथों में ले लिया और आगे बढ़ गए तभी हम इस्लाम के इस हुक्म का एलान कर सकते हैः

इल्म सीखना हर मुसलमान पर वाजिब है।

इस बारे में सबसे बड़ी बात यह है कि दीनी मामलों में जो चीज़ सबसे ऊपर है वह यह है कि एक-दो लोग नहीं बल्कि पूरा समाज इस बात पर भरोसा रखता हो कि यह काम एक इस्लामी काम है जो एक-एक मुसलमान पर वाजिब है और दूसरे सारे वाजिब कामों की तरह इस काम को भी वाजिब समझ कर ही पूरा करना है।

दूसरे दीनी कामों के बारे में तो लोगों के अंदर यह सोच बन गई है लेकिन अभी इस बारे में एक आम समाजी सोच नहीं बन पाई है। इसीलिए हम देखते हैं कि मुसलमान दूसरे दीनी कामों को तो पूरी लगन व मेहनत और अच्छी नियत के साथ कर लेते हैं मगर इस बारे में सोचते भी नहीं। दूसरे कामों के लिए पैसा भी ख़र्च करते हैं और हज़ारों तरह की मुसीबतें भी झेल लेते हैं। पिछले 50 साल तक हज कितना कठिन काम था और आने-जाने में कितनी दिक़्क़तें होती थीं। हालत यह होती थी कि हाजियों को हज से वापसी की कोई बहुत उम्मीद

भी नहीं होती थी। इसके बाद भी ऐसे लोग कम ही निकलते थे जिन पर हज वाजिब हो गया हो और वह हज न करें। इसी तरह रमज़ान के महीने के रोज़ों को ले लीजिए, पहले कितनी गर्मी पड़ती थी। फिर भी लोग रोज़े रखते थे और कभी-कभी तो गर्मी व प्यास की वजह से बेहोश भी हो जाते थे लेकिन अगला दिन निकलता था तो फिर उसी शौक़ और उसी जोश के साथ रोज़ा रखने के लिए तैयार रहते थे।

इस्लामी इतिहास में इस्लाम के शुरू के पीरियड से हटकर ऐसा कोई पीरियड दिखाई नहीं पड़ता कि इल्म के लिए समाज के आम लोगों ने इतना बढ़-चढ़कर काम किया हो। बाद में अगर किसी ने इतनी ज़्यादा कोशिश की भी तो तब की जब वह ख़ुद इल्म के रास्ते पर आ गया था और इल्म का मज़ा चख चुका था।

ज़रा सोचिए कि अगर मुस्लिम समाज के आम लोग भी इल्म का यह मज़ा एक इस्लामी ड्युटी समझकर चख लें तो फिर पूरे इस्लामी समाज में कितना बड़ा बदलाव आ जाएगा। फिर सारे रास्ते अपने आप खुलते चले जाएंगे।

इस मामले की गुत्थी के सुलझाने का बस एक ही फ़ार्मूला है और वह यह है कि मुस्लिम समाज के एक-एक मुसलमान को यह एहसास हो जाए कि इल्म को फैलाना हर एक की इस्लामी ड्युटी है और दूसरे सारे वाजिब कामों की तरह यह भी एक वाजिब काम है।

(2)
ईमान

जब भी हम ईमान के बारे में बात करते हैं तो आमतौर पर दो बातें हमारे सामने होती हैं:

एक यह कि ईमान कैसे जन्म लेता है? वह कौन सा फ़ैक्टर है जिसकी वजह से आदमी ईमान और अक़ीदे की तरफ़ अपने क़दम बढ़ा देता है? इसका कोई भीतरी फ़ैक्टर है या बाहरी? यानी क्या आदमी का अपना नेचर उसे इस तरफ़ खींचकर ले आता है या बाहर की इस दुनिया में मौजूद दूसरा कोई फ़ैक्टर आदमी को ईमान लाने पर मजबूर कर देता है?

दूसरे यह कि दीन और ईमान का फ़ाएदा क्या है और हमारी ज़िंदगी पर इसका क्या असर पड़ता है?

यह दोनों ही बातें दिलचस्पी भरी हैं और इन दोनों पर ही ध्यान देना ज़रूरी है।

क्या ईमान एक मुसीबत है?

अब सवाल यह है कि दीन पर ईमान होने से आदमी पर क्या असर पड़ता है? हो सकता है कि एक आदमी दीन पर भरपूर ईमान रखता हो या दूसरा बिल्कुल बेदीन हो और उसके पास ज़रा सा भी ईमान न हो। हमें ध्यान इस बात पर देना है

कि क्या ईमान आदमी के लिए कोई बहुत बड़ी नेमत या बहुत बड़ी दौलत है कि अगर हाथ से निकल जाए तो जैसे उसने अपनी ज़िंदगी की एक बहुत अनमोल दौलत को खो दिया या नहीं बल्कि यह तो एक मुसीबत और जंजाल है कि अगर हाथ से निकल भी जाए तो कोई बात नहीं बल्कि अच्छा ही है कि आदमी एक अच्छे-ख़ासे सर-दर्द से बच गया?

Leo Tolstoy एक बहुत मशहूर नॉवेलिस्ट गुज़रे हैं जो रूस के रहने वाले थे। वह लिखते हैः

> ईमान उस चीज़ का नाम है जिसके साथ आदमी अपनी पूरी ज़िंदगी बिता देता है।

उनके कहने का मतलब यह है कि ईमान हमारी ज़िंदगी की एक बड़ी अनमोल दौलत है। अगर आदमी ने ईमान को अपने हाथ से जाने दिया तो वह एक बड़ी क़ीमती चीज़ गंवा बैठेगा।

इंसान की ज़िंदगी में ऐसी बहुत सारी चीज़ें हैं जिन्हें ज़िंदगी के लिए बहुत बड़ी पूँजी माना जा सकता है। बदन की सेहत-सलामती, अमन-अमान, दौलत, इल्म, समाजी इंसाफ़, अच्छे बीवी-बच्चे, अच्छे दोस्त, अच्छी परवरिश, पाक रूह[1] ... यह सब हमारी ज़िंदगी की सब से क़ीमती और सबसे अच्छी चीज़ें हैं। इन में से अगर कोई एक चीज़ भी न हो तो आदमी को बहुत बड़ा नुक़सान उठाना पड़ता है और उसके हाथ से बहुत कुछ निकल जाता है। इन में से किसी एक का भी न होना एक तरह की बदनसीबी है।

ईमान की दौलत भी इन्हीं में से है बल्कि इन सब से क़ीमती चीज़ और सब से बड़ी दौलत, ईमान ही है।

इस बारे में सूरए सफ़ की आयत/10-11 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> ऐ ईमान वालो! क्या मैं तुम्हें एक ऐसी तिजारत (बिज़नेस) का पता बताऊँ जो तुम्हें दर्दनाक अज़ाब[2]

---

[1] आत्मा

[2] प्रकोप

> से बचा लेगी? वह यह है कि अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान ले आओ!

इस आयत में क़ुरआन ने अल्लाह और उसके रसूल[स०] पर ईमान को बिज़नेस और पूँजी बताया है।

आदमी बना ही कुछ ऐसा है कि वह रूहानी[1] दुनिया को बाद में समझ पाता है, पहले दिखाई देने वाली, छुई जाने वाली या महसूस होने वाली चीज़ों को पहचानता है जिसकी वजह भी सामने ही है। जैसे दौलत आदमी के लिए एक बहुत बड़ी पूँजी है, हर आदमी इसको आसानी से पहचान लेता है और इसको संभाल कर भी रखता है बल्कि ऐसा भी होता है कि आदमी इसका लालची भी बन जाता है जिसके नतीजे में बस अपने लिए ही नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए मुसीबत बन जाता है।

अब यह दूसरी मिसाल देखिए! अख़लाक़ या आचार-सदाचार, अच्छी परवरिश का होना या अच्छे कल्चर का होना भी एक बहुत बड़ी पूँजी है जिसका आदमी की कामयाबी में बहुत बड़ा रोल होता है बल्कि यूँ कहा जाए कि इसका असर पैसे वाली पूँजी से कहीं बढ़कर होता है लेकिन आदमी इस पूँजी को देर में पहचान पाता है। अब या तो आदमी ख़ुद ही इतना समझदार हो कि वह अपने आप आचार-सदाचार की अच्छाई को समझ जाए या फिर उसे बताया जाए और वह अपने टीचर या किसी ऊँची हस्ती की ज़बान से इस पूँजी के बारे में सुने।

जैसे इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> अख़लाक़ बेहतरीन साथी है।[2]

इमाम अली[अ०] एक दूसरी हदीस में फ़रमाते हैंः

> न जाने कितने इज़्ज़त वाले ऐसे हैं जिन्हें ख़ुद उनकी बुराईयाँ बदनाम कर देती हैं और न जाने

---

[1] Spritual

[2] बिहारूल अन्वार, जि. 71, पेज. 396

> कितने बदनाम ऐसे हैं जिनकी अच्छाईयाँ उन्हें इज़्ज़तदार बना देती हैं।[1]

ईमान भी ठीक इसी दूसरी मिसाल की तरह है। न जाने कितने ऐसे लोग हैं जो इस पूँजी के साथ एक सुकून भरी ज़िंदगी बिता रहे हैं। उन्हें जिस्मानी या रूहानी सलामती, लम्बी उम्र और दिल का सुकून इसी ईमान की वजह से मिलता है जो उनके दिल में बैठा हुआ है लेकिन उनका ध्यान कभी इस तरफ़ जाता भी नहीं है। इसके मुक़ाबले में ऐसे भी लोग हैं जिनकी पूरी उम्र तरह-तरह की मुसीबतों में बीत जाती है, जो अपने बदन और अपनी रूह की सलामती से हाथ धो बैठते हैं, जल्दी बूढ़े हो जाते हैं और आख़िर में बिल्कुल ही टूट जाते हैं मगर मरते-मरते भी उनकी समझ में नहीं आता कि यह जो कुछ उनके साथ हुआ है उसकी असली वजह यह है कि उन्होंने अपनी ज़िंदगी की एक बहुत बड़ी पूँजी गंवा दी है जिसका नाम ईमान है।

इस बात को बस ईमान से मिलने वाले फ़ाएदों और उसके असर ही से समझा जा सकता है।

अख़लाक़ का सहारा

ईमान का पहला असर यह होता है कि यह अख़लाक़ का एक मज़बूत सहारा बन जाता है यानी अख़लाक़ जो अपने आप में हमारी ज़िंदगी की एक बहुत बड़ी पूँजी है, वह भी ईमान के बिना ठीक-ठाक आगे नहीं बढ़ सकता। जितने भी अख़लाक़ से जुड़े क़ानून हैं सिर्फ़ उनकी ही नहीं बल्कि पूरी रूहानी दुनिया[2] की बुनियाद इसी ईमान यानी अल्लाह पर ईमान के ऊपर रखी हुई है। दीनदारी, सच्चाई, दूसरों की अमानतों को संभालकर रखना, दूसरों के लिए कुछ करने का एहसास,

---

[1] बिहारूल अन्वार, जि. 71, पेज. 396

[2] Sprituality

दूसरों पर एहसान करना, दूसरों के साथ मिल-जुल कर रहना, इंसाफ़... यानी वह सारी बातें जिन्हें किसी भी आदमी के लिए अच्छा माना जाता है और दुनिया के सारे लोग जिन्हें इज़्ज़त की नज़र से देखते हैं, यहाँ तक कि इन अच्छाईयों का दिखावा करने वाले लोग भी जिन्हें अच्छा कहते हैं, ऐसी सारी अच्छाईयाँ ईमान की वजह से ही जन्म लेती हैं लेकिन यह सारी अच्छाईयाँ एक तरह से आदमी को होने वाले बहुत से फ़ाएदों से दूर भी कर देती हैं यानी आदमी इन में से जिस अच्छाई को भी अपनाएगा उसकी वजह से उसे इस दुनिया से जुड़े किसी न किसी फ़ाएदे को छोड़ना पड़ेगा। इसलिए आदमी के पास कोई ऐसी वजह होना चाहिए जिसके बाद वह इस तरह के हर नुक़सान को झेलने पर दिल से राज़ी हो जाए और होने वाले इन नुक़सानों को नुक़सान ही न समझे। यह काम आदमी तभी कर सकता है जब वह दीन की बनाई हुई रूहानी दुनिया में क़दम रख दे और इसका मज़ा चख ले। यह तो हम सब जानते ही हैं कि दीन की बुनियाद अल्लाह के ऊपर ईमान पर टिकी होती है और अल्लाह पर ईमान का कम से कम फ़ाएदा यह तो है ही कि इस से किसी भी आदमी के दिल को यह भरोसा हो जाता है कि उसके अच्छे कामों या उसके अंदर पाई जाने वाली अच्छाईयों का बदला अल्लाह के यहाँ ज़रूर मिलेगा क्योंकि क़ुरआन ने वादा किया है कि अल्लाह अच्छे लोगों के कामों को बर्बाद नहीं करता है।[1]

अगर इस हिसाब से देखा जाए तो ऐसा हर नुक़सान आख़िर में फ़ाएदे में ही बदल जाता है।

असल में आदमी के पास दो रास्तों से हटकर तीसरा कोई रास्ता है भी नहीं:

या तो यह कि वह ख़ुद अपने आप को ही सब कुछ मान ले और फिर किसी भी तरह का नुक़सान न झेले। उसे जिस काम में अपनी भलाई दिखाई दे वह काम कर डाले।

---

[1] सूरए तौबा/120

या यह कि अल्लाह पर ईमान ले आए और अख़्लाक़ के नाम पर होने वाले किसी भी नुक़सान को नुक़सान ही न समझे या कम से कम यह मान ले कि मरने के बाद इस नुक़सान का बदला ज़रूर मिलेगा।

अगर इंसानियत[1], दूसरों के साथ हमदर्दी और दूसरों के लिए कुछ करने का जज़्बा अल्लाह की मर्ज़ी पाने के लिए न हो तो यह बड़ी ख़तरनाक चीज़ बन जाती हैः

> क्या वह आदमी फ़ाएदे में है जिसने अपनी बुनियाद अल्लाह की मर्ज़ी पर रखी है या वह फ़ाएदे में है जिसने अपनी बुनियाद उस गिरते हुए कगारे पर रखी है जो सारी इमारत[2] को लेकर जहन्नम में गिर जाने वाला है?[3]

यानी तक़्वा पर रखी हुई बनियाद मज़बूत है या उस कगारे पर रखी हुई जो नीचे से ख़ाली है? जिस आदमी की ज़िंदगी अल्लाह के बताए रास्तों से हटकर किसी और रास्ते पर चलेगी उसके लिए हर पल बस ख़तरा ही ख़तरा है।

सूरए अन्कबूत की आयत/41 में हैः

> जिन लोगों ने अल्लाह को छोड़कर दूसरे सरपरस्त (Gaurdians) बना लिए हैं उनकी मिसाल मकड़ी के जैसी है जिसने घर तो बना लिया लेकिन सब से कमज़ोर घर मकड़ी का ही होता है।

दुनिया का सब से कमज़ोर घर मकड़ी का होता है। जो भी अल्लाह को छोड़कर दूसरों पर भरोसा कर बैठता है उसकी मिसाल मकड़ी और उसके घर के जैसी है। यह आयत साफ़-साफ़ बता रही है कि अल्लाह से हटकर किसी पर भी भरोसा नहीं करना चाहिए। अल्लाह के सिवा किसी दूसरे को अपना सहारा तो बनाया जा सकता है लेकिन वह सहारा इतना

---

[1] मानवता
[2] बिल्डिंग
[3] सूरए तौबा/109

कमज़ोर होगा कि कभी भी गिर सकता है और जब गिरेगा तो अपने साथ हमें भी ले डूबेगा। समझा–बुझाकर और ज़ोर–ज़बरदस्ती से कुछ दिनों के लिए तो किसी को अच्छा बनाया जा सकता है लेकिन यह रास्ता बड़ा कमज़ोर होता है क्योंकि इस रास्ते पर चलने वाला कभी भी रास्ते से भटक सकता है।

अल्लाह ने इस दुनिया की हर चीज़ को बनाया है और हर चीज़ अगर टिकी है तो बस उसी के सहारे। अल्लाह की तरह उस पर ईमान भी सारी अच्छाईयों की जड़ और रूहानी दुनिया का सब से बड़ा सोर्स है। अल्लाह से हटकर अपनाई गई अच्छाईयाँ उस नक़ली नोट की तरह होती हैं जिनकी कोई क़ीमत नहीं होती जो बस एक काग़ज़ होता है।

सूरए इब्राहीम की आयत/24–27 में हैः

> क्या तुम ने नहीं देखा कि अल्लाह ने अच्छाई की मिसाल उस पाक पेड़ से दी है जिसकी जड़ें ज़मीन के अंदर गहराई तक गई हुई हैं और जिसकी टहनियाँ ऊपर आसमान तक पहुँची हुई हैं जिस पर अल्लाह की इजाज़त से हर वक़्त फल आता है। अल्लाह लोगों के लिए मिसाल देता है ताकि वह इसी रास्ते से होश में आ जाएं।

यह मिसाल इसलिए दी गई है ताकि अगर हम इन्सानियत[1] के पेड़ को फलदार बनाना चाहते हैं तो इसकी जड़ें तौहीद और अल्लाह पर ईमान की गहराई में उतरी हुई होना चाहिएं।

इसके बाद अगली आयत में अल्लाह फ़रमाता हैः

> बुरी बातों की मिसाल उस बुरे पेड़ की सी है जिस की जड़ें ज़मीन से बाहर निकल आई हों और जिस की कोई बुनियाद भी न हो।

फिर अल्लाह फ़रमाता हैः

---

[1] मानवता

> अल्लाह हक़ (सही बातों) के ज़रिए दुनिया में और क़यामत में ईमान लाने वालों को मज़बूती के साथ ठहराए रखता है और ज़ुल्म करने वालों को भटकने देता है।

सूरए माऊन की आयत/1-3 में हैः

> क्या तुम ने उस आदमी को देखा है जो दीन को झुठलाता है? यह वही है जो यतीमों को धुतकारता है और किसी को भी किसी ग़रीब आदमी को खाना खिलाने के लिए तैयार नहीं करता।

ऐसे आदमी के ऊपर फ़र्क़ ही नहीं पड़ता कि किसी ग़रीब का पेट भरा भी है या नहीं? यह किसी को भी इस बात पर तैयार नहीं करता कि वह किसी ग़रीब का पेट भरा दे।

असल में यह आयत कहना यह चाह रही है कि जो भी दीन को छोड़ देता है वह हर अच्छाई को छोड़ देता है यानी जिसने दीन और ईमान को छोड़ दिया उसने हर अच्छे काम को छोड़ दिया।

दीन की बनाई दुनिया में आते ही आदमी को बहुत सारी चीज़ें छोड़ना पड़ती हैं। उधर से आदमी के अंदर दूसरों की तरह दुनिया वाली ज़िंदगी जीने का शौक़ भी होता है जिसकी सब से बड़ी वजह उसकी अपने आप से मोहब्बत और निजी फ़ाएदे होते हैं। अब अगर किसी मज़बूत ईमान का सहारा न हो तो फिर आदमी क्यों दूसरों के लिए अपना नुक़सान करेगा और मुसीबतें झेलेगा?

इस बारे में सूरए निसा, आयत/135 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> ऐ ईमान वालो! इंसाफ़ के लिए उठ खड़े हो और गवाही बस अल्लाह के लिए दो, न कि किसी दूसरी वजह से, चाहे वह गवाही ख़ुद तुम्हारे अपने नुक़सान में ही क्यों न हो या तुम्हारे माँ-बाप या रिश्तेदारों के घाटे में।

या सूरए माएदा की आयत/8ः

> ऐ ईमान वालो! अल्लाह के लिए उठ खड़े हो और इंसाफ़ के साथ गवाही देने वाले बन जाओ। ख़बरदार! किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर मजबूर न कर दे कि तुम इंसाफ़ को ही छोड़ बैठो। हर हाल में इंसाफ़ से काम लो क्योंकि इंसाफ़, तक़वा के बहुत पास है।

यह सब ऐसी बातें हैं जिनका हुक्म बस दीन ही दे सकता है और सिर्फ़ दीन की वजह से ही इन पर चला भी जा सकता है।

इस तरह यह बात भी साबित हो जाती है कि अख़लाक़, समाजी इंसाफ़, इंसानियत और समाजी अमन-अमान (Morals, Social Justice, Humanity and Social Harmony) जैसी चीज़ें हमारी ज़िंदगी की बहुत बड़ी पूँजी हैं। ख़ुद इन सब को ख़रीदने के लिए भी एक दूसरी पूँजी चाहिए जिसका नाम ईमान है।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> अगर किसी आदमी के अंदर कोई एक अच्छी बात हो तो मैं उसकी वजह से उसकी दूसरी बहुत सी बुराईयों को सहकर उसे माफ़ कर सकता हूँ लेकिन दो चीज़ें कभी माफ़ नहीं कर सकताः एक नासमझी और दूसरे ईमान का न होना क्योंकि जहाँ ईमान नहीं होगा वहाँ अमन भी नहीं होगा। जिस आदमी के पास ईमान न हो उसकी किसी बात पर भरोसा नहीं किया जा सकता। फिर जहाँ अमन और भरोसा न हो वहाँ ज़िंदगी जीना बड़ा कठिन होता है क्योंकि हर वक़्त एक उलझन, डर और मुसीबत सी बनी रहती है। आदमी को हर पल इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि ख़ुद उसके दोस्तों से ही उसे नुक़सान पहुँच जाए। साथ ही जहाँ अक़्ल नहीं होती है वहाँ ज़िंदगी ही नहीं

> होती है बल्कि ज़िंदगी की जगह मौत ले लेती है। वहाँ लोग चलती-फिरती लाशों की तरह होते हैं।[1]

दीन आदमी के अंदर इतना ज़्यादा तक़्वा और अच्छाईयाँ देखना चाहता है कि आदमी अगर बिल्कुल अकेला भी हो और कोई उसे देखने वाला न हो तब भी वह गुनाह न करे और इंसाफ़ पर इतना ज़्यादा चलने वाला हो कि अपने नीचे वालों पर ताक़त होने के बावजूद भी ज़ुल्म न करे। दीन आदमी के अंदर ज़ुल्म के मुक़ाबले में बहादुरी देखना चाहता है, दीन आदमी को मज़बूती के साथ डटे रहते हुए सीधे रास्ते पर चलता हुआ देखना चाहता है, दीन चाहता है कि आदमी अल्लाह से हटकर किसी पर भी भरोसा न करे, दीन आदमी के अंदर मोहब्बत और हमदर्दी का जादू देखना चाहता है और यह सब का सब बस ईमान के नूर से ही जन्म ले सकता है। सिर्फ़ अल्लाह पर ईमान की ताक़त ही वह ताक़त है जो आदमी को इतने ऊँचे दर्जे तक ले जा सकती है।

जिस्म और जान की सलामती

ईमान का एक दूसरा फ़ाएदा जिस्म और जान की सलामती भी है।

हज़रत अली[अ०] तक़्वा के बारे में फ़रमाते हैंः

> यह रूह[2] की बीमारियों की दवा और बदन की बीमारियों का इलाज है।[3]

यह तो सभी जानते हैं कि ईमान कोई टेबलेट या कैप्सूल नहीं है कि दवाई की तरह इसका असर फ़ौरन दिखाई देने लगे। जिस्म और जान पर ईमान का असर तब समझ में आता है जब आदमी को अपने ईमान के बल पर एक सुकून भरी

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 1, पेज. 27

[2] आत्मा

[3] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/189

रूह, सूकून भरा दिल और आराम भरी ज़िंदगी मिल जाती है। ऐसा आदमी यह नहीं सोचता कि किसे लूटे और किसे नोचे। अगर दूसरों को कोई नेमत मिल जाती है तो इसके दिल में उन्हें देखकर जलन की आग नहीं भड़कती। दिमाग़ी उलझनें और स्ट्रेस ऐसे आदमी को जिस्मानी बीमारियों का शिकार नहीं बना पाते और न ही दुनिया की लालच उसे कमज़ोर बना पाती है जिसकी वजह से उसकी उम्र बढ़ जाती है।

समाज के साथ तालमेल

ईमान का एक तीसरा फ़ाएदा यह होता है कि इस से आदमी और समाज के बीच एक तरह का तालमेल बन जाता है। स्कॉलर्स का मानना है कि एक जानदार की ज़िंदगी के चलते रहने की शर्त यह है कि जिस Natural Environment में वह जानदार रह रहा है वह उस जानदार के हिसाब से ही तैयार किया गया हो लेकिन अगर इसके उलट हुआ और वह जानदार ख़ुद को उस माहौल के हिसाब से न ढाल न सका तो एक न एक दिन वह जानदार ख़त्म हो जाएगा।

आदमी Natural Environment के हिसाब से इसी तरह का जानदार है यानी अगर आदमी को उसके नेचर के हिसाब से माहौल न मिले तो उसके बदन के बहुत से हिस्से धीरे-धीरे काम करना बंद कर देते हैं ताकि उसे उसके आस-पास के माहौल में ढाल दें। दूसरी तरफ़ से वह ख़ुद भी अपने नेचुरल मिज़ाज की वजह से अपने आसपास के माहौल से मुक़ाबला करने की कोशिश करता है ताकि उसे अपने हिसाब से बदल सके।

आदमी अपने Natural Environment के साथ-साथ अपने समाज से भी जुड़ा होता है। इसलिए Social Environment के साथ भी उसका तालमेल होना बहुत ज़रूरी है।

Social Environment समाज में रहने वाले लोगों, उनके रहन-सहन, उनकी आदतों और उन क़ानूनों व रस्मों से मिल कर बनता है और समाज इसी डगर पर चलता है।

Social Environment में आदमी की ख़्वाहिशें (Desires) और उसकी ज़रूरतें ज़िन्दा रहने की शर्तों में गिनी जाती हैं। इसलिए इन दोनों बातों का एक-दूसरे के साथ तालमेल में होना बहुत ज़रूरी है। यानी एक तरफ़ से समाज के अंदर और दूसरी तरफ़ से ख़ुद आदमी के अंदर एक तरह की लचक का होना बहुत ज़रूरी है तभी यह तालमेल बन पाएगा। समाज के अंदर लचक होने का मतलब यह है कि समाज के अंदर सब को इंसाफ़ मिलता हो और किसी एक आदमी का भी हक़ न मारा जाता हो। साथ ही समाज सब लोगों को साथ में लेकर आगे बढ़ रहा हो, न कि बस कुछ लोगों को ध्यान में रखकर आगे का रास्ता तय कर रहा हो। ख़ुद आदमी के अंदर भी लचक पाए जाने का मतलब यह है कि वह समाज को ही असल माने यानी समाज की भलाई के मुक़ाबले में अपने निजी फ़ाएदे को छोड़ दे क्योंकि समाज कुछ ऐसे लोगों से मिलकर बनता है जिनकी सोच, नज़रिए, ज़रूरतें और पसंद-नापसंद सब एक-दूसरे से अलग होती है। इसलिए जब तक समाज और आदमी यानी दोनों तरफ़ से लचक नहीं दिखाई जाएगी तब तक इन दोनों में तालमेल नहीं बन सकता। इस तालमेल को सब से अच्छा अगर कोई चीज़ बना सकती है तो वह है दीन क्योंकि दीन की वजह से ही समाज में समाजी इंसाफ़ पैदा हो सकता है और दीन की वजह से ही आदमी के अंदर दूसरों के लिए कुछ करने का जज़्बा उभर सकता है। दीन ही है जो आदमी से कहता है कि जो कुछ मिला है उसी पर राज़ी हो जाओ और आदमी हो भी जाता है।

अब यहाँ पर हो सकता है कि किसी के दिमाग़ में यह सवाल जन्म ले ले कि अगर समाज में रहने वाला हर आदमी इसी फ़ार्मूले पर चलने लगेगा तो समाज तो बिल्कुल ठहर सा जाएगा और ठप हो जाएगा क्योंकि समाज तो तभी आगे बढ़

सकता है जब हर आदमी कुछ न कुछ पाने और कर दिखाने की धुन में लगा हो।

आदमी दो तरह से राज़ी हो सकता हैः एक तो यही जिस पर अभी ऊपर बात हो चुकी है और जो बहुत अच्छी चीज़ है यानी आदमी को जो कुछ मिला है और जो कुछ उसके हिस्से में आया है उसी पर राज़ी हो जाए क्योंकि बहरहाल हर आदमी का पहले से तय अपना एक हिस्सा है और उससे आगे दूसरों का हक़[1] शुरू हो जाता है। इसलिए किसी के भी दिल में यह चाहत नहीं उभरना चाहिए कि जो कुछ है वह सब बस मुझे मिल जाए क्योंकि दूसरों को भी तो कुछ न कुछ मिलना है।

दूसरी तरह का राज़ी होना अपने ऊपर होने वाले ज़ुल्म पर राज़ी होना है। यहाँ अगर आदमी चुप होकर बैठ जाए तो यह ग़लत है बल्कि उसे आगे बढ़कर हक़ छीनने वाले से अपना हक़ वापस ले लेना चाहिए। दीन इस तरह के राज़ी रहने को अच्छा नहीं मानता है बल्कि इसे गुनाह बताया गया है।

अपने ऊपर कंट्रोल

ईमान का चौथा फ़ाएदा ''अपने ऊपर कंट्रोल'' पाना है लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं सोचना चाहिए कि अपने ऊपर कंट्रोल पाना कोई दीनी चीज़ है यानी कोई यह न समझे कि अगर दीन न होता तो ''अपने ऊपर कंट्रोल'' करने की कोई ज़रूरत ही नहीं थी। यह ग़लत सोच है। अपने ऊपर कंट्रोल करना अच्छे अख़लाक़ (Moral Values) जैसे सच्चाई या इंसाफ़ की तरह ही है कि अगर कोई दीन को न भी मानता हो तब भी इन बातों को तो नहीं ठुकरा सकता। सच्चाई, इंसाफ़ या अपने ऊपर कंट्रोल पाने का हुक्म दीन ने इसलिए नहीं दिया है कि यह दीन की बातें हैं। यह दीन की बनाई हुई चीज़ें नहीं हैं क्योंकि इन बातों को तो एक बेदीन आदमी भी अच्छा समझता

---

[1] अधिकार

है। हाँ! यह बात सही है कि दीन ने इन बातों को लागू करने का जो सिस्टम बनाया है वह बड़ा ज़बरदस्त है।

आदमी की ज़िंदगी में सब से बड़ी जंग ख़ुद उसके अंदर होती है। एक मशहूर स्कॉलर ने कहा है कि अपने मुक़ाबले में आदमी के तीन दुश्मन होते हैं और तीन जंग के मैदानः नेचर से जंग, दूसरे लोगों से जंग और ख़ुद अपने आप से जंग।

आदमी पहले वाले जंग के मैदान में तो अच्छा-ख़ासा कामयाब हो गया है यानी उसने सर्दी-गर्मी, बीमारियों और दूसरी तरह की नेचुरल मुश्किलों पर ठीक-ठाक कंट्रोल पा लिया है।

दूसरे लोगों से जंग हमेशा से होती आई है, आज भी हो रही है और आगे भी होती रहेगी।

तीसरी और सब से बड़ी जंग अपने आप से जंग है। यह जंग ऐसी है कि हर आदमी अपने अंदर हर पल यह जंग लड़ रहा है।

रसूले इस्लाम[स०] की एक बहुत मशहूर हदीस हैः

> शाबाशी उन लोगों के लिए है जो जिहादे असग़र (छोटे जिहाद) में कामयाब हो गए हैं लेकिन अभी उन्हें जिहादे अकबर (बड़े जिहाद) में कामयाब होना है।

यह हदीस भी यही बात कह रही है लेकिन आदमी अपने ऊपर तभी कंट्रोल पा सकता है जब उसके पास दीन और ईमान भी हो क्योंकि बस दीन और ईमान ही के अंदर वह ताक़त है जो उसे कंट्रोल कर सकती है।

इल्म और समझदारी

आख़िर में इस बात का ध्यान रखना भी बहुत ज़रूरी है कि ठीक है कि ईमान एक बहुत बड़ी पूँजी है लेकिन इस पूँजी से आदमी बस तभी फ़ाएदा उठा सकता है जब उसके पास इल्म

और महारत भी हो क्योंकि अगर यह दो चीज़ें नहीं होंगी तो हो सकता है कि जो फ़ाएदा ईमान से मिलने वाला है वह न मिल सके या ख़ुद आदमी अन्जाने में कोई ग़लत काम कर बैठे या कोई दूसरा उसकी दीनदारी से कोई ग़लत काम करवा ले। इसलिए ईमान अगर इल्म और समझदारी के साथ हो तभी आदमी के काम आ सकता है।

(3)

दुनिया के बारे में इस्लाम क्या कहता है?

दीन के नाम पर मिम्बरों और मस्जिदों से जिस बात पर सब से ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है वह है दुनिया की बुराई, दुनिया को बुरा बताना, दुनिया को छोड़ने पर उकसाना और सारे समाजों से कटकर ज़िंदगी बिताने का शौक़ दिलाना। जब भी कोई दीन के बारे में बात करना चाहता है तो सब से पहले उसके दिमाग़ में जो बात आती है वह यही है कि आओ! दुनिया की बुराई में कुछ किताबें पढ़ लेते हैं और फिर लोगों के बीच जाकर उन्हें बता देते हैं। इसीलिए जितनी यह बातें लोगों के बीच कही गई हैं उतनी दूसरी बातें नहीं कही गई हैं।

यह मामला लोगों के आचार-सदाचार और उनकी ज़िंदगी से जुड़ा हुआ है। इसलिए इस पर बात करना बहुत ज़रूरी है। अगर इस बात को सही और अच्छे ढंग से कह दिया जाए तो यह लोगों के एक-दूसरे के साथ उठने-बैठने, मिलने-जुलने, उनके रहन-सहन, अच्छी सोच, कामयाबी और समाजी मेल-मोहब्बत पर अपना बहुत गहरा असर छोड़ेगी। अगर इसी को ग़लत तरीक़े से कह दिया जाए तो यह पूरे समाज को खोखला बनाकर रख देगी, लोग बेकार हो जाएंगे और पूरा समाज ठप

होकर रह जाएगा जिसके नतीजे में निजी-समाजी यानी हर तरह की मुसीबतें आ जाएंगी।

दो तरीक़े

असल बात यह है कि जब मिम्बरों या मस्जिदों से लोगों को समझाया-बुझाया जाता है तो इसी दूसरे वाले तरीक़े से समझाया जाता है जिसका असर यह होता है कि समाज बेकार होकर रह गया है।

ऐसा दो वजहों से हुआ है। पहली वजह यह है कि इस्लाम से पहले भी दुनिया की बुराई करने वाले कुछ नज़रिए[1] पहले से पाए जाते थे। जब मुसलमानों का दूसरे समाजों से मेल-जोल शुरू हुआ तो यह बातें मुसलमानों के बीच भी फैल गईं।

दूसरी वजह पिछले चौदह सौ साल में मुसलमानों पर बीतने वाले वह भयानक हालात हैं जिनकी वजह से अपने आप दुनिया से दूरी और दुनिया को छोड़ देने वाली बातों ने मुसलमान समाज में अपनी पकड़ मज़बूत बना ली।

आइए! सब कुछ छोड़कर सीधे क़ुरआन की तरफ़ देखते हैं कि इस बारे में क़ुरआन क्या कह रहा है? क्या क़ुरआन भी दुनिया को ठुकरा देने की बात करता है या उसने कुछ और कहा है?

ज़ोह्द (Asceticism): क़ुरआन में

क़ुरआन ने यूँ तो दुनिया को इस काम का समझा ही नहीं है कि इंसान दुनिया को ही सब कुछ समझ ले और फिर इसी के सहारे अपनी ज़िंदगी जिए लेकिन साथ ही साथ क़ुरआन ने यह भी नहीं कहा है कि यह दुनिया, इस में पाए जाने वाले चाँद-सूरज, अनगिनत सितारे, ज़मीन-आसमान, इंसान, जानवर

[1] मत

व परिंदे और दूसरी सारी चीज़ें बेकार हैं बल्कि इसके उलट दुनिया में पाए जाने वाले इस सिस्टम को सबसे सटीक सिस्टम बताया है।

नीचे लिखी इन दोनों आयतों को देखिएः

> (1) पैसा और बाल-बच्चे दुनिया की ज़िंदगी की रौनक़ हैं और बाक़ी रह जाने वाली अच्छाईयाँ पालने वाले के यहाँ सवाब[1] व उम्मीद दोनों हिसाब से बेहतर हैं।[2]
>
> (2) हम ने ज़मीन-आसमान और जो कुछ इनके बीच में है, वह सब खेल-तमाशे के लिए नहीं बनाया है।[3]

यहाँ तक कि क़ुरआन ने इसी दुनिया की कुछ चीज़ों की क़सम भी खाई है जैसे यह आयतेंः

> (1) सूरज और उसकी रौशनी की क़सम! और चाँद की क़सम जब वह उसके पीछे चले।[4]
>
> (2) क़सम है इन्जीर और ज़ैतून की और तूरे सीनीन की और इस अमन-शान्ति वाले शहर की।[5]
>
> (3) फ़र्राटे भरते हुए तेज़ी से दौड़ने वाले घोड़ों की क़सम जो टापें मार-मारकर चिंगारियाँ उड़ाने वाले हैं। फिर सुबह के वक़्त हमला करने वाले हैं।[6]

इसके बाद क़ुरआन फ़रमाता हैः

> तुम रहमान की ख़िलक़त (रचना) में किसी भी तरह का फ़र्क़ नहीं देखोगे। फिर दोबारा आँख उठाकर देखो! क्या कहीं कोई कमी दिखाई देती है?[7]

---

[1] पुण्य
[2] सूरए कहफ़/46
[3] सूरए दुख़ान/38
[4] सूरए शम्स/1-3
[5] सूरए तीन/1-3
[6] सूरए आदियात/1-2
[7] सूरए मुल्क/3

सच्ची बात यह है कि दुनिया और इस दुनिया के अंदर पाए जाने वाले सिस्टम और दूसरी सारी चीज़ों को बुरी नज़र से देखना इस्लाम के बुनियादी क़ानून यानी तौहीद से मेल ही नहीं खाता है। सिरे से इन दोनों के बीच कोई रिश्ता ही नहीं है। यह सोच तो बस Materialism को अपनाकर और अल्लाह को ठुकरा कर ही बन सकती है या फिर उस सोच की वजह से बन सकती है जिसमें दो ख़ुदा पाए जाते हैंः एक अच्छाईयों को बनाने वाला ख़ुदा और दूसरा बुराईयों को बनाने वाला ख़ुदा।

लेकिन जो दीन तौहीद को लेकर आया हो और जिसका ख़ुदा रहमान, रहीम और सुनने-जानने वाला हो उस दीन में इस सोच के लिए कोई जगह नहीं है जिसका सुबूत क़ुरआन की बहुत सारी आयतें भी हैं। अगर इस्लाम ने दुनिया को एक मिट जाने वाली चीज़ बताया है या उस घास की तरह बताया है जो बारिश के बाद ज़मीन से उगती है, फिर फैलकर सूख जाती है और आख़िर में धीरे-धीरे ख़त्म हो जाती है तो ऐसा बस इसलिए कहा है ताकि आदमी को निचले दर्जे से उठाकर ऊपर लाया जाए यानी ऐसा न हो कि आदमी इस दुनिया में आने के बाद इस दुनिया और इस दुनिया के अंदर पाई जाने वाली चीज़ों को ही अपना सब कुछ समझ ले क्योंकि अगर आदमी इन चीज़ों में अटक गया तो फिर जिस ऊँचाई तक उसे जाना है वहाँ तक वह जा ही नहीं सकता। फिर वह इसी रोटी, कपड़ा और मकान में ही उलझ कर रह जाएगा। अगर इस चीज़ को सामने रखकर देखा जाए तो फिर कोई वजह दिखाई नहीं पड़ती कि हम दुनिया को बुरा कहें और इसे छोड़कर अपने घर के किसी कोने में दुबक कर बैठ जाएं।

यही वजह है कि किसी भी मुसलमान स्कॉलर ने क़ुरआन की इस तरह की आयतों से यह मतलब बिल्कुल नहीं निकाला है कि यह दुनिया बेकार है और इसका सिस्टम ऐसा है कि इसे आँख भरकर देखना भी नहीं चाहिए।

क्या दुनिया से मोहब्बत होना बुरी चीज़ है?

कुछ लोगों ने क़ुरआन की इन आयतों के बारे में कहा है कि इन आयतों का मतलब यह नहीं है कि ख़ुद दुनिया कोई बुरी चीज़ है क्योंकि दुनिया में पाई जाने वाली कोई भी चीज़ बुरी नहीं है। यह सब तो अल्लाह की ताक़त की निशानियाँ हैं और इन्हें किसी भी तरह बुरा नहीं कहा जा सकता। असल में इन चीज़ों से मोहब्बत और लगाव बुरी चीज़ है। ख़ुद दुनिया कोई बुरी चीज़ नहीं है बल्कि दुनिया से मोहब्बत करना और लगाव रखना बुरा है।

मुस्लिम स्कॉलर्स का यह नज़रिया भी बहुत चर्चा में रहा है। अगर लोगों से पूछा जाए कि दुनिया के बुरे होने का मतलब क्या है तो यही जवाब मिलेगा कि दुनिया की मोहब्बत बुरी चीज़ है वरना ख़ुद दुनिया कोई बुरी चीज़ नहीं है और अगर बुरी होती तो अल्लाह दुनिया को बनाता ही नहीं।

यह बात यूँ तो बहुत मशहूर है और इसको सही भी माना गया है लेकिन अगर ध्यान दिया जाए तो इस में भी कमी है और यह बात भी क़ुरआन से मेल नहीं खाती है क्योंकि सब से पहले तो हमें यह देखना होगा कि दुनिया से आदमी की मोहब्बत एक नेचुरल चीज़ है कि नहीं? यानी क्या ख़ुद अल्लाह ने दुनिया की मोहब्बत के साथ आदमी को इस दुनिया में भेजा है या ऐसा नहीं है बल्कि आदमी के इस दुनिया में आने के बाद यहाँ पाए जाने वाले कुछ ख़ास फ़ैक्टर्स ने उसे ऐसा बना दिया है कि अब वह इस दुनिया से मोहब्बत करने लगा है? जैसे माँ-बाप का अपने बच्चों से या बच्चों का अपने माँ-बाप से मोहब्बत करना, मियाँ-बीवी का एक-दूसरे से मोहब्बत करना, आदमी का अपने पैसे से मोहब्बत करना या इसी तरह की और बहुत सी चीज़ों से मोहब्बत करना... क्या यह सब ख़ुद आदमी के नेचर में है या यह ग़लत परवरिश की वजह से है। क्या ऐसा है कि अगर सही से आदमी को पाला

गया होता तो उसके अंदर ऐसी कोई भी मोहब्बत पैदा न होती ?

ज़ाहिर सी बात है कि दुनिया में पाई जाने वाली चीज़ों से मोहब्बत करना एक नेचुरल चीज़ है जो ख़ुद आदमी की बनावट के अंदर रखी गई है। जब यह मोहब्बतें और इन चीज़ों से लगाव नेचुरल है तो अब यह कैसे हो सकता है कि दुनिया से मोहब्बत या लगाव बुरा हो और इंसान से कह दिया जाए कि इस मोहब्बत से दूर रहो ? यह बात भी हम सब जानते हैं कि अगर देखा जाए तो कोई भी जानवर, परिंदा, कीड़ा-मकोड़ा या दूसरी और कोई चीज़ बेकार पैदा नहीं की गई है। इसी तरह आदमी के बदन का छोटे से छोटा हिस्सा, उसकी नेचुरल आदतें, चाहतें, शौक़ और पसंद-नापसंद भी ऐसी नहीं है जिसे बेकार बनाया गया हो। इन में से हर चीज़ का अपना एक ख़ास काम है। बच्चों से मोहब्बत, माँ-बाप से मोहब्बत, मियाँ-बीवी की आपसी मोहब्बत, पैसे से मोहब्बत, तरक़्क़ी व कामयाबी से मोहब्बत, दूसरे लोगों से मिलने वाली मोहब्बत की चाहत... इन में से हर-हर चीज़ का अपना एक ख़ास फ़ाएदा और अपना एक ख़ास काम है और अगर इन चीज़ों को छोड़ दिया जाए तो आदमी की ज़िंदगी की बुनियाद ही हिल जाएगी।

इससे हटकर ख़ुद क़ुरआन ने इन मोहब्बतों को अल्लाह की निशानी बताया है जैसे सूरए रूम की आयत/21 में आदमी के जन्म और उसकी मोहब्बत को अल्लाह की निशानियों के तौर पर पहचनवाया गया हैः

> उसकी निशानियों में से यह भी है कि उसने तुम्हारा जोड़ा तुम्हीं में से बनाया है ताकि तुम्हें उससे सुकून मिले और फिर तुम्हारे बीच मोहब्बत व रहमत भी रखी है और इसमें समझदारों के लिए बहुत सी निशानियाँ हैं।

अगर मियाँ-बीवी की एक दूसरे से मोहब्बत कोई बुरी चीज़ होती तो इस आयत में इस मोहब्बत को अल्लाह की निशानी न बताया गया होता।

इस बात में भी कोई शक नहीं है कि यह मोहब्बत व लगाव आदमी के नेचर में शुरू ही से रख दिया गया है और यह बात भी बिल्कुल सामने की है कि लोगों की एक-दूसरे से मोहब्बत या अपने आसपास की दूसरी चीज़ों से मोहब्बत इस दुनिया के सिस्टम को चलाने के लिए एक ड्राइवर की तरह है। अगर यह मोहब्बतें, यह लगाव, यह चाहतें और यह आपसी रिश्ते न होते तो आदमियों की नस्ल आगे ही न बढ़ पाती, फिर दुनिया में कहीं भी न कोई कल्चर नज़र आता और न कहीं ज़िंदगी का कोई असर दिखाई पड़ता बल्कि इस ज़मीन पर आदमी ही न दिखते।

इस मसले का हल क्या है?

यह थे दुनिया के बारे में दो नज़रिए। एक यह कि ख़ुद दुनिया ही बुरी चीज़ है और दूसरे यह कि यह दुनिया तो अच्छी है लेकिन इस दुनिया से मोहब्बत बुरी चीज़ है।

जिन लोगों के हिसाब से यह दुनिया बुराई से भरी हुई है उनके पास इंसान की निजात (Salvation) का कोई रास्ता नहीं है। इन लोगों के सामने आख़िरी रास्ता बस ख़ुदकुशी यानी अपनी जान दे देना है। दुनिया के सब से बुरे और सब से बुरी क़िस्मत वाले लोग भी यही हैं।

जिन लोगों के हिसाब से यह दुनिया तो अच्छी है लेकिन इसकी मोहब्बत बुरी चीज़ है उनके यहाँ मर-मरके जीने की ज़रूरत नहीं है बल्कि इन लोगों का मानना है कि आदमी की निजात का रास्ता यह है कि उसे इस दुनिया और इस के अंदर पाई जाने वाली चीज़ों से जो मोहब्बत है उस मोहब्बत से जंग करे और इन सारी मोहब्बतों की जड़ ही काट दे। अगर आदमी ऐसा कर ले तभी वह कामयाब हो पाएगा।

इन लोगों के लिए जवाब यह है कि पहली बात तो यह है कि दुनिया और दुनिया में पाई जाने वाली चीज़ों से मोहब्बत

एक नेचुरल चीज़ है जो हर आदमी के अंदर पाई जाती है और उसे इसके साथ ही इस दुनिया में भेजा गया है। इसलिए इस मोहब्बत की जड़ तो बिल्कुल नहीं काटी जा सकती। बहुत से बहुत यह हो सकता है कि सालों साल की कोशिशों के बाद इस मोहब्बत को उठाकर Sub-Conscious में फेंक दिया जाए। जिसका ख़तरनाक रिज़ल्ट यह होगा कि एक दिन Sub-Conscious में दबी हुई यह चाहत किसी और भयानक रास्ते से बाहर निकल आएगी जिससे न जाने कौन-कौन सी दिमाग़ी बीमारियाँ भी जन्म ले सकती हैं। इससे हटकर इस बात में तो कोई शक ही नहीं है कि आदमी को इस तरह की मोहब्बत से दूर करना पूरी तरह से उसके घाटे में है। यह उसी तरह है जैसे बदन के किसी हिस्से को बदन से काटकर अलग कर दिया जाए। आदमी के अंदर पाया जाने वाला हर एहसास अपने आप में एक ताक़त है जो उसके अंदर इसलिए रखा गया है ताकि उसकी ज़िंदगी में एक तरह की हलचल बाक़ी रहे। यह मोहब्बत व लगाव बेकार नहीं बनाए गए हैं और जब बेकार नहीं बनाए गए हैं तो फिर इन्हें बर्बाद क्यों किया जाए ?

क़ुरआन क्या कहता है?

अगर क़ुरआन को सामने रखा जाए तो यह बात समझ में आती है कि दुनिया से मोहब्बत करना कोई बुरी चीज़ नहीं है और न ही क़ुरआन ने हमें यह हुक्म दिया है कि इस मोहब्बत की जड़ ही काट दो। यह एक दूसरी चीज़ है और इसका हल भी दूसरा है। क़ुरआन ने जिस बात को बुरा कहा है वह है आँखें बंद करके दुनिया में डूब जाना और दुनिया को ही सब कुछ समझ लेना और यह मान लेना है कि जैसे अब इस दुनिया से निकलकर कहीं जाना ही नहीं है।

सूरए कहफ़ की आयत/46 में अल्लाह फ़रमा रहा हैः

> माल और औलाद बस इसी दुनिया की ज़िंदगी की रौनक़ है लेकिन जो अच्छाईयाँ और अच्छे काम बचे रह जाने वाले हैं वह सवाब[1] व उम्मीद के हिसाब से बेहतर हैं।

यह आयत हमें बता रही है कि तुम्हारी ज़िंदगी तुम्हारे पैसों या तुम्हारे बच्चों में नहीं है बल्कि अच्छाईयाँ और अच्छे कामों में हैं और यही बाद में तुम्हारे काम आएंगे।

सूरए यूनुस की आयत/7 में क़ुरआन हमें दुनिया वालों की पहचान इस तरह करा रहा हैः

> जो लोग हम से मिलने की उम्मीद नहीं रखते और अपनी इस दुनिया वाली ज़िंदगी पर ही ख़ुश हो गए हैं और जो हमारी निशानियों को अंदेखा किए हुए हैं, यह सब वह हैं जिनके कामों की वजह से इनका ठिकाना जहन्नम[2] है।

इस आयत में साफ़-साफ़ दुनिया पर ख़ुश हो जाने को बुरा कहा जा रहा है। साथ ही क़ुरआन दुनिया के पुजारियों की पहचान यह बता रहा है कि वह इसी चार दिन की दुनिया को अपना सब कुछ समझ लेते हैं और फिर क़यामत को भूल जाते हैं।

सूरए नज्म की आयत/28-29 में अल्लाह इस तरह फ़रमा रहा हैः

> आप भी हर उस आदमी से दूर हो जाइए जो हमारी तरफ़ से अपना मुँह फेर ले और दुनिया की ज़िंदगी से हटकर कुछ न चाहे।

सूरए आले इमरान की आयत/14 में एक बार फिर इन्हीं लोगों के बारे में बात हो रही है कि इन लोगों को दुनिया की ज़िंदगी से बाहर कुछ दिखाई ही नहीं देताः

---

[1] सवाब

[2] नर्क

> इन लोगों की नज़र में दुनिया की चाहतें जैसे औरतें, बच्चे, सोने-चाँदी के ढेर, मोटे-ताज़े घोड़े या दूसरे जानवर और खेतियाँ सब सजाकर रख दी गई हैं कि यही दुनिया की पूँजी है।

इस आयत में भी सिर्फ़ दुनिया की मोहब्बत के बारे में बात नहीं की जा रही है बल्कि यह बताया जा रहा है कि दुनिया के झमेलों को बढ़ा-चढ़ाकर कुछ लोगों के सामने सजाकर रख दिया गया है और इन झमेलों में यह लोग डूब कर रह गए हैं और बस यही सब चीज़ें इनकी दुनिया हैं।

सूरए तौबा की आयत/38 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> क्या तुम क़यामत के बदले में दुनिया की ज़िंदगी पर ख़ुश हो गए हो। याद रखो! क़यामत में इस दुनिया की असलियत बहुत थोड़ी सी है।

इन सारी आयतों में एक ही बात कही जा रही है कि दुनिया और दुनिया की चीज़ों पर ख़ुश हो जाना ही सब कुछ नहीं है बल्कि मरने के बाद की ज़िंदगी भी आने वाली है जहाँ इस दुनिया की असलियत कुछ भी नहीं होगी। जो आज यहाँ इस दुनिया के होकर रह जाएंगे वह कल क़यामत में बहुत घाटे में रहेंगे।

इन दोनों बातों में फ़र्क़ है। पैसा, बीवी-बच्चों और ज़िंदगी से जुड़ी दूसरी सारी चीज़ों से मोहब्बत करना एक अलग चीज़ है और इन्हीं सब चीज़ों को अपना सब कुछ समझ लेना या इन्हीं पर ख़ुश हो जाना एक अलग चीज़ है। अब अगर कोई अपनी इसी दुनिया में खोकर रह जाए तो उसका इलाज यह नहीं है कि दुनिया से उसके रिश्ते की जड़ों को ही काट दिया जाए बल्कि इसका इलाज यह है कि ऐसे आदमी के अंदर कुछ ऐसी दूसरी बातों को उभारा जाए जो इस आम ज़िंदगी से ऊपर उठकर पैदा होती हैं। इसका मतलब यह हुआ कि दीन आदमी के अंदर एक ऐसी समझ पैदा करना चाहता है जिसके आने के बाद दुनिया के बारे में उसकी सोच ही बदल जाती है।

वैसे यह बातें पहले से ही आदमी के नेचर में रख दी गई हैं लेकिन इनका लेवल, जिस्मानी लेवल से ऊँचा होता है इसलिए यह देर में उभर पाती हैं बल्कि इन्हें उभारने के लिए कोशिश करना पड़ती है। यह समझ रूहानी (Spritual) दुनिया के अंदर पैदा होती है और वहीं से बाहर निकलती है।

किसी भी तरह का एहसास हो, कोई भी मोहब्बत या कोई भी लगाव हो वह उस झरने की तरह है जो आदमी की रूह[1] से निकलता है और बहने लगता है। दीन यह बिल्कुल नहीं चाहता है कि दुनिया की ज़िंदगी की ओर बहने वाले इन झरनों को सिरे से बंद ही कर दिया जाए बल्कि दीन तो यह चाहता है कि इन झरनों के साथ-साथ कुछ दूसरे झरनों का रास्ता भी खोल दिया जाए यानी रूहानी झरनों का रास्ता।

आइए! इस मिसाल को देखते हैंः

एक आदमी अपने बच्चे को स्कूल भेजता है। जब वह देखता है कि उसके बच्चे का सारा शौक़ बस खेलकूद और मौज-मस्ती है तो उसे दुख होता है जिसके बाद वह उसे डाँटता है और सज़ा भी देता है। वह उसे बुरा भला कहता है और उस पर चीख़ता-चिल्लाता भी है क्योंकि वह चाहता है उसका बच्चा खेलने-कूदने के साथ-साथ स्कूल जाने और पढ़ने-लिखने का आदी भी हो। सामने की बात है कि बच्चे के अंदर लिखने-पढ़ने का शौक़, खेलने-कूदने के शौक़ के बाद जन्म लेता है और इतना ही नहीं बल्कि बच्चे के अंदर लिखने-पढ़ने का शौक़ उभारने के लिए उसके साथ लगना भी पड़ता है और कोशिश भी करना पड़ती है। लिखने-पढ़ने का शौक़ हर आदमी में नेचुरल तौर पर दिखाई पड़ता है लेकिन इसको उभारने की ज़रूरत होती है।

इसका यह मतलब नहीं है कि अपने बच्चे में लिखने-पढ़ने का शौक़ उभारने के लिए बाप उसके अंदर सिरे से खेलकूद, मौज-मस्ती, आराम और खाने-पीने की चाहत का रास्ता ही

---

[1] आत्मा

बंद कर दे। इसके उलट अगर किसी दिन उसे पता चल जाए कि उसके बच्चे के अंदर खाने पीने या खेलने-कूदने का शौक़ ख़त्म हो गया है या कम हो गया है तो बाप चौकन्ना हो जाता है क्योंकि उसके हिसाब से यह एक तरह की बीमारी है। इसलिए वह फ़ौरन ही बच्चे को लेकर डॉक्टर के पास जाता है क्योंकि बाप यह भी जानता है कि जहाँ बच्चे के अंदर स्कूल जाने और लिखने-पढ़ने का शौक़ होना चाहिए वहीं उसके अंदर एनर्जी भी होना चाहिए और यह एनर्जी सही वक़्त पर खेलने-कूदने और खाने-पीने से ही आ सकती है। इसलिए अगर कोई बाप अपने बच्चे के खेलने-कूदने या खाने-पीने से दुखी है तो असल में वह उसके खेल-कूद में डूबे रहने की वजह से दुखी है, न कि ख़ुद खेल-कूद से क्योंकि खेलना-कूदना तो बच्चे का नेचर है।

इस्लामी सिस्टम में इस थ्योरी की जड़ें

दुनिया और आदमी के बारे में क़ुरआन की अपनी एक ख़ास सोच है जिसकी वजह से ही उसने दुनिया और दुनिया की मोहब्बतों में डूब जाने से बचने के लिए कहा है। क़ुरआन का मानना है कि आदमी बस इसी मिट्टी से नहीं बना है बल्कि इस मिट्टी से कहीं ऊँचे दर्जे की एक रूहानी दुनिया और भी है और उससे भी आदमी का एक सिरा मिलता है। उस दुनिया के मुक़ाबले में हमारी यह दुनिया कुछ भी नहीं है। इसीलिए क़ुरआन ने कहा है कि तुम्हारी ज़िंदगी बस इसी दुनिया में सिमट जाने वाली चीज़ नहीं है। तुम्हारी एक दूसरी ज़िंदगी भी है जो तुम्हारे मरने के बाद शुरू होगी। यूँ तो आदमी इसी दुनिया में लगे पेड़ का फल है लेकिन क़ुरआन ने उसकी ज़िंदगी को मरने के बाद वाली ज़िंदगी से भी जोड़ दिया है। अब जब उसकी ज़िंदगी की जड़ें इतनी गहरी और इतनी फैली हुई हैं तो उसकी नज़र बस इसी दुनिया पर नहीं होना

चाहिए बल्कि उसकी नज़र में इस दुनिया के साथ-साथ मरने के बाद वाली दुनिया भी होना चाहिए।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैं:

> यह कितना बुरा कारोबार है कि तुम अपनी दुनिया को ही बेचे दे रहे हो?[1]

अब अगर क़ुरआन के हिसाब से देखें तो क़ुरआन वाली तौहीद में आदमी के पास इतनी भी छूट नहीं है कि वह इस दुनिया को बुरा समझते हुए इसे सिरे से छोड़ दे और उधर दूसरी तरफ़ से इस बात की छूट भी नहीं है कि इसी दुनिया को सब कुछ समझ बैठे कि यहीं जीना है और यहीं मरना है। क़ुरआन में पाई जाने वाली तौहीद के हिसाब से आदमी को इस दुनिया की नेमतें अपने काम में लाना है लेकिन इन नेमतों के सहारे एक दूसरी दुनिया के सफ़र की तैयारी भी करना है जिसका नाम क़यामत है और आदमी का असली ठिकाना भी वही है।

अख़लाक़[2] और दुनियादारी

इस्लामी अख़लाक़ भी आदमी से यही कहता है कि दुनिया और यहाँ की चीज़ों को अपने दिल से इतना मत लगाओ कि फिर कुछ दिखाई और सुनाई ही न दे। यह वह चीज़ है जिसको दूसरे सारे धर्म या स्कूल ऑफ़ थॉट्स भी मानते हैं। उन सब का भी मानना यही है कि अगर आदमी को एक समाजी ज़िंदगी के लिए तैयार होना है तो कुछ न कुछ ऐसा करना पड़ेगा कि उसके अंदर रूहानी दुनिया का शौक़ भी जन्म ले ले ताकि इस दुनिया से उसका लगाव कुछ कम हो सके। आदमी के अंदर जितनी ज़्यादा लालच की आग भड़की हुई होगी उतना ही समाज को मुसीबतें झेलना पड़ेंगी।

---

[1] नजहुल बलाग़ा, ख़ुतबा/32

[2] आचार

अगर आदमी की कामयाबी को ध्यान में रखकर देखा जाए तो कभी भी इस मामले में बॉडर को नहीं फलांगना चाहिए। आदमी की कामयाबी इस बात पर टिकी है कि वह इस दुनिया को न तो सिरे से छोड़ ही बैठे और न ही इसे अपने दिल से लगा ले। यही आदमी की कामयाबी की पहली शर्त है।

अब हो सकता है कि कोई यह भी सोचने लगे कि इसका मतलब तो यह है कि आदमी अल्लाह से भी मोहब्बत करे और इस दुनिया से भी। यानी दोनों को अपने दिल में रखे और यह तो एक तरह का शिर्क है।

नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है। ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मतलब यह है कि आदमी का नेचर कुछ ऐसा ही है कि उसके अंदर इस दुनिया में पाई जाने वाली चीज़ों से एक तरह की मोहब्बत पाई जाती है और ऐसा अल्लाह ने अपने इल्म से किया है यानी इसमें आदमी के लिए बहुत सारी भलाईयाँ छुपी हुई हैं। जितने भी नबी और रसूल आए हैं वह सब भी ऐसे ही थे और उन्होंने भी अल्लाह की इन नेमतों को इस्तेमाल किया है और उसका शुक्र अदा किया है।

दुनिया से आदमी का लगाव न तो टूट सकता है और न ही इसे टूटना चाहिए।

आदमी के अंदर एक दूसरी दुनिया भी पाई जाती है जो हमारी इस दुनिया से बिल्कुल अलग है और वही आदमी का असली पड़ाव है, वही आइडियल दुनिया है। यह दुनिया और इसके अंदर पाई जाने वाली Materialistic चीज़ें आदमी का आख़िरी कमाल नहीं होना चाहिएं।

अगर आदमी इसी दुनिया को अपना कमाल समझकर इसे अपना दिल दे बैठे तो ऐसी ही मोहब्बत को बुरा कहा गया है।

दूसरी तरफ़ से देखा जाए तो आदमी के अंदर पाए जाने वाले यही एहसास और मोहब्बतें उसके पास एक बहुत बड़ी ताक़त भी हैं और ज़िंदगी बिताने के लिए एक बहुत बड़ा सोर्स भी जो ख़ुद आदमी के अंदर से फूटता है। यह वह ताक़त है जो अल्लाह की तरफ़ से बस आदमी को ही दी गई है। नबी

व रसूल इसलिए नहीं आए थे कि आदमी से उसकी इस ताक़त को ही छीन लें और उसके एहसास की जड़ों को काट दें बल्कि वह तो इसलिए आए थे ताकि उसकी इस दुनिया को ऐसा बना दें कि आदमी अल्लाह के बताए हुए रास्ते पर चलकर ऊपर की तरफ़ चढ़ता चला जाए। इस बात को यूँ भी कहा जा सकता है कि अल्लाह के भेजे हुए नबी और रसूल इसलिए आए थे ताकि वह इस दुनिया को इसकी असली जगह पर ही रहने दें यानी आदमी और इस दुनिया के बीच जो एक लगाव या मोहब्बत का रिश्ता पाया जाता है उसे उसकी असली जगह पर वापस ले आएं ताकि आसमानों तक की सैर करने वाले आदमी के दिल के इस रूहानी सफ़र में यह दुनिया रास्ते का पत्थर न बन जाए।

तभी तो क़ुरआन में लिखा हैः

अल्लाह ने किसी के सीने में दो दिल नहीं रखे हैं।[1]

इस आयत का यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि आदमी या तो अल्लाह से मोहब्बत करे या अल्लाह को छोड़कर अपने बीवी-बच्चों और पैसे से। इस आयत का मतलब यह है कि लोगों को इस दुनिया में आने के बाद यहीं रहकर अपने कमाल तक पहुँचना है और अपने आख़िरी पड़ाव तक जाना है। दो चीज़ें तो एक साथ इकट्ठा नहीं हो सकतीं कि आदमी अल्लाह को भी अपना आख़िरी पड़ाव मान ले और इस दुनिया को भी। आख़िरी पड़ाव बस एक ही हो सकता हैः या अल्लाह या दुनिया।

सामने की बात है कि अगर आदमी एक ही वक़्त में कई चीज़ों से मोहब्बत कर रहा हो तो इस में कोई दिक़्क़त नहीं है क्योंकि यह एक नेचुरल चीज़ है।

---

[1] सूरए अहज़ाब/4

(4)

क़ुरआन और हमारी दुनिया

क़ुरआन ने बहुत सी आयतों में बार-बार और बहुत ज़ोर देकर हमें सोचने-समझने का हुक्म दिया हैः अल्लाह की बनाई हुई चीज़ों के बारे में सोचना ताकि आदमी अल्लाह की बनाई हुई दुनिया की गहराईयों तक पहुँच सके, अपनी ज़िंदगी और कामों पर ध्यान देना ताकि आदमी अपनी ज़िम्मेदारियों को ठीक से पूरा कर सके, पिछले लोगों के बारे में सोचना ताकि उन क़ानूनों को समझा जा सके जो अल्लाह ने समाज के लिए बनाए हैं।

अगर आदमी को हल्का-फुल्का सा ही सोचना हो तो यह कोई बड़ा काम नहीं है। इतना तो कोई भी सोच सकता है लेकिन बस इतना सा सोचने का कोई बड़ा रिज़ल्ट नहीं मिलता लेकिन अगर किसी मामले की गहराई में जाकर पूरे ध्यान से सोचना हो या अगर पूरे ध्यान के साथ किसी ऐसी किताब को समझना हो जिसमें बहुत गहरी-गहरी बातें लिखी हों तो यह काम कठिन है लेकिन इसका फ़ाएदा बहुत बड़ा है जो आदमी के मन को एक नई ज़िंदगी दे देता है।

इस्लाम का सेंटर तौहीद है। तौहीद हमारी ज़िंदगी का सबसे बड़ा और सबसे कठिन मामला है जिस पर बहुत बारीकी और

ध्यान से काम करने की ज़रूरत होती है। अभी तक इस से बड़ा कोई मामला आदमी के सामने आया भी नहीं है। दूसरी तरफ़ से हमारे उसूले दीन और उसूले दीन में भी ख़ासकर तौहीद में तक़लीद नहीं की जा सकती यानी दूसरों की देखा-देखी या सुन-सुनाकर उसूले दीन को नहीं माना जा सकता बल्कि रिसर्च करने, समझने और गहराई में जाकर ध्यान देने के बाद उसूले दीन को मानने के लिए कहा गया है। इसलिए ज़रूरी था कि इस्लाम अपने मानने वालों को सोचने-समझने पर उभारता और बहुत सी आयतें इस बारे में उतरतीं, जैसा कि दीन ने किया भी है।

क़ुरआन ने सोचने-समझने के मामले को यूँ ही हल्का-फुल्का सा नहीं बताया है और न ही अपने मानने वालों से बस यह कह दिया है कि जाओ और सोचो, जिस चीज़ के बारे में चाहो सोचो और जैसे चाहो सोचो। नहीं! ऐसा नहीं है बल्कि दीन ने अच्छी तरह से यह भी बताया है कि किन चीज़ों के बारे में सोचना है और कैसे सोचना है। जैसे सूरए बक़रा की आयत/164 में कुछ चीज़ों का नाम लेकर लोगों से कहा है कि जाओ! अपनी कमर कस लो और इन चीज़ों के बारे में रिसर्च करोः

> ज़मीन-आसमान में, रात-दिन के आने-जाने में, उन कश्तियों में जो नदियों में लोगों की भलाई के लिए चलती हैं और उस पानी में जिसे अल्लाह ने आसमान से बरसाकर उससे बंजर ज़मीनों को उपजाऊ बना दिया है, फिर उस में तरह-तरह के चौपाए फैला दिए है और हवाओं के चलाने में और उन बादलों में जो ज़मीन-आसमान के बीच अल्लाह के हुक्म से भागे फिर रहे हैं, समझ वालों के लिए निशानियाँ पाई जाती हैं।

इस आयत में क़ुरआन ने साफ़-साफ़ हमें कुछ सब्जेक्ट दे दिए हैं कि जाओ ज़मीन-आसमान पर और रात-दिन के निकलने पर ध्यान दो! चाँद, सूरज और सितारों के सिस्टम की

स्टडी करो! ज़मीन के ऊपर, ज़मीन के नीचे और हर चौबीस घंटे के बाद सूरज के मुक़ाबले में ज़मीन की हालत के बदलने पर रिसर्च करो कि ऐसा क्या होता है कि हर बारह घंटे के बाद रात आती है और फिर दिन निकल आता है। जाओ! इन सब चीज़ों पर ध्यान दो और Astronomy या Astrology जैसे सब्जेक्ट दुनिया वालों के सामने रखो।

> उन कश्तियों में जो दरियाओं में लोगों की भलाई के लिए चलती हैं।

पानी में चलने वाली इन कश्तियों से आदमी ख़ूब फ़ाएदे उठाता है, सफ़र करता है, दूर-दूर तक जाता है, अपनी जानकारियाँ बढ़ाता है, कारोबार करता है... यह कश्तियाँ, इन कश्तियों का न डूबना और आदमी को इन से मिलने वाले फ़ाएदे... यह सब कुछ पूरे एक सिस्टम के साथ चल रहा है और इस सिस्टम की गहराई तक आदमी बस तभी पहुँच सकता है जब वह इन सारी चीज़ों पर ध्यान दे।

> उस पानी में जिसे अल्लाह ने आसमान से बरसा कर उससे बंजर ज़मीनों को उपजाऊ बना दिया है।

यह बारिश का पानी जो आसमान से बरसता है जिससे अल्लाह बंजर ज़मीनों को उपजाऊ बना देता है... इसके अंदर भी हज़ारों भलाईयाँ छुपी हुई हैं जिनको बस वही लोग समझ सकते हैं जो इन चीज़ों पर ध्यान देते हैं। यही वह लोग हैं जो इस दुनिया के नेचर को समझ जाते हैं, जो बारिश के पानी के फ़ाएदों को भांप लेते हैं और जो जड़ी-बूटियों व पेड़-पौधों से मिलने वाले फ़ाएदों को भी समझ लेते हैं।

> हवाओं के चलाने में और उन बादलों में जो ज़मीन-आसमान के बीच अल्लाह के हुक्म से भागे फिर रहे हैं, इनमें समझदारों के लिए निशानियाँ पाई जाती हैं।

हवाओं के चलने में और ज़मीन-आसमान के बीच बादलों के भागे-फिरने में यानी हर-हर चीज़ में अल्लाह की निशानियाँ पाई जा रही हैं लेकिन यह सारी निशानियाँ बस उन्हीं लोगों को

दिखाई देती हैं जो सोचते-समझते हैं और अल्लाह की बनाई इस दुनिया को समझना चाहते हैं।

अगर आपके लिए कोई अंजान राइटर एक किताब लिखकर अपने लेटर के साथ आपके पास भेज दे और उस लेटर में लिखा हो कि अगर आप मुझे पूरी तरह से समझना या पहचानना चाहते हैं तो मेरी इस किताब को ध्यान से पढ़िए और अगर वह उस लेटर में उस किताब के चेप्टर्स भी बता दे और कह दे कि इन में से एक-एक चेप्टर को पूरे ध्यान से पढ़िए तो सामने की बात है कि अगर इस किताब के राइटर को समझना है तो इस किताब के एक-एक पेज को पूरे ध्यान से पढ़ना होगा। अगर इस किताब की ज़बान नहीं आती है तो इसकी ज़बान को सीखना होगा, अगर किसी चेप्टर या किसी पेज को समझने में दिक़्क़त हो रही है तो अपने टीचर से जाकर समझना होगा, हो सकता है कि इस किताब की कुछ बातों को समझने के लिए डिक्शनरी की मदद भी लेना पड़े... अगर राइटर को समझना है तो यह सब करना पड़ेगा। सीधी सी बात है कि इस किताब को बस आगे-पीछे से देख लेने से उसके राइटर के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाएगा।

इसी तरह अगर कोई इस दुनिया को भी उस किताब के पन्नों की तरह बस उलट-पलट कर देख रहा हो और दुनिया की गहराई में जाकर इस पर ध्यान न दे रहा हो तो दुनिया की ऐसी स्टडी किसी भी काम की नहीं है। इससे कुछ हाथ आने वाला नहीं है। अगर कुछ हाथ आएगा तो बस पूरे ध्यान से और पूरी गहराई के साथ सोचने-समझने से ही हाथ आएगा और तभी दुनिया के ऊपर पड़े पर्दे उठना शुरू होंगे लेकिन इसके लिए आदमी के पास पहले कुछ हो तो सही कि वह सोचे। असली बात यह है कि सोचना और समझना एक ऐसा काम है जो इस बाहर की दुनिया में नहीं होता बल्कि यह सब बस आदमी के दिमाग़ के अंदर होता है यानी आदमी जो कुछ सोचता है अपने दिमाग़ में सोचता है और आदमी सोचता तब है जब पहले से उसके पास किसी चीज़ के बारे में जानकारी

हो। अगर उसके पास किसी तरह की कोई जानकारी ही नहीं होगी तो वह सोचेगा किस चीज़ के बारे में? यह काम बिल्कुल तैरने जैसा है कि तैरने के लिए पानी चाहिए। पानी नहीं होगा तो आदमी तैरेगा कहाँ? इसी तरह सोचने-समझने और ध्यान देने का काम भी है कि पहले से आदमी के पास कुछ जानकारियाँ हों ताकि आदमी उनको सामने रखकर सोचे-समझे और ध्यान दे यानी पहले पानी हो कि आदमी तैर सके।

जैसे फूल के बारे में बस वही सोच सकता है जो फूल के बारे में पूरी जानकारी रखता हो, जो फूल बनने और बड़ा होने के बारे में जानता हो, जो फूल के फलने-फूलने के बारे में जानता हो, जो फूल की पत्तियों के बारे में जानता हो, जो फूल की रंगत और ख़ूबसूरती के बारे में जानता हो... जो आदमी यह सब जानता होगा वही फूल के बारे में सोच सकता है और वही अल्लाह की उस क़ुदरत और इल्म के बारे में सोच-समझ सकता है जिसकी वजह से फूल बना है लेकिन वह आदमी जो बस फूल की शक्ल और साइज़ या ख़ूबसूरती को देख रहा हो और फूल की अंदर की दुनिया के बारे में कुछ जानता ही न हो तो ऐसा आदमी इस फूल और इसके बनाने वाले के बारे में भला क्या सोच-समझ सकता है? उसकी तो कुछ भी समझ में नहीं आएगा।

जिस तरह तैरने के लिए पानी चाहिए उसी तरह सोचने-समझने के लिए नॉलेज चाहिए। अब अगर जिस चीज़ के बारे में सोचना है तो उसके बारे में हमारे पास जानकारी न हो तो पहले हमें यह जानकारी जुटाना होगी। कहने का मतलब यह है कि क़ुरआन ने लोगों को बस सोचने-समझने का हुक्म नहीं दिया है बल्कि किन चीज़ों के बारे में सोचना है यह भी इस ऊपर वाली आयत में और दूसरी बहुत सारी आयतों में बता दिया है यानी हमें सोचने का हुक्म भी दिया है और किन चीज़ों के बारे में सोचना है और कैसे सोचना है यह भी बता दिया है।

फिर मुसलमान रास्ते से भटक क्यों गए?

दुख की बात यह है कि इस्लामी इतिहास में ऐसी बहुत सी बातें हो गईं जिनकी वजह से मुसलमान क़ुरआन के बताए रास्ते से बिल्कुल उलटे रास्ते पर चल पड़े। वैसे इस बीच कुछ बहुत थोड़े से ऐसे लोग भी आए हैं जिनको क़ुरआन का बताया रास्ता समझ में आ गया था और इन लोगों ने उन चीज़ों के बारे में ख़ूब सोचा-समझा भी है जिनके बारे में क़ुरआन ने हुक्म दिया था। यह वही लोग हैं जिन्हें देखकर मुसलमान ही नहीं बल्कि सारी दुनिया फूली नहीं समाती है लेकिन बाक़ी सारे मुसलमान क़ुरआन के रास्ते से दूर हो गए और उन्होंने उन बातों पर बहस शुरू कर दी जिनका क़ुरआन से कुछ लेना-देना ही नहीं था बल्कि उन बातों से तो क़ुरआन ने रोका था क्योंकि वह बातें फ़ालतू और बेकार थीं जिन में आदमी के लिए कोई भलाई नहीं थी। जिसका भी क़ुरआन पर ईमान हो उसे ऐसी हर बात से दूर रहना चाहिए जो बेकार और फ़ालतू हो[1], चाहे वह बात दीन के बारे में या जानकारी वाली ही क्यों न हो।

Theological Discussions

अगर कोई Theology की किताबों पर एक नज़र डाले तो अपने आप उसकी समझ में आ जाएगा कि पिछले उलमा ने न जाने कितने साल, कितना वक़्त, कितनी एनर्जी और न जाने कितना पैसा इन बातों पर लगा दिया है और अगर इन बातों को क़ुरआन से मिलाकर देखा जाए तो यह सच्चाई सामने आती है कि क़ुरआन ने तो इस तरह की बातों का हुक्म ही नहीं दिया था और न ही लोगों से इस तरह की बातों के बारे में सोचने-समझने के लिए कहा था। इस तरह की बेकार बातों पर लोगों ने सालों-साल बहसें की हैं लेकिन क़ुरआन ने जिन

[1] जो फ़ाल्तू बातों से दूर रहने वाले हैं। (सूरए मोमिनून/3)

बातों और जिन चीज़ों पर ध्यान देने, सोचने और रिसर्च करने के लिए कहा था वह सब ऐसे ही धरी की धरी रह गईं जिसके बाद दुनिया के दूसरे लोगों ने इस काम को अपने कंधों पर लिया और यह झंडा इस तरह उठाया कि सारी दुनिया में उनका नाम हर जगह फैल गया। इस बीच हमारी हालत यह हो गई है कि हम उन बातों को भी उन से सीखने पर मजबूर हैं जिनके बारे में क़ुरआन ने ख़ुद हमें हुक्म दिया था।

बहरहाल आदमी जितना भी इस दुनिया के बारे में सोचता जाएगा उतना ही उसे इस पूरे सिस्टम में एक तरह का तालमेल दिखाई देगा। वह देखेगा कि इस दुनिया की हर चीज़ एक-दूसरे से पूरी तरह से जुड़ी हुई है और हर चीज़ इस सिस्टम के साथ-साथ चल रही है। जिसका मतलब यह है कि यह सारी दुनिया एक इकाई की तरह है।

दुनिया को बनाने वाला बस एक है

यह बात भी ध्यान में रखने की है कि क़ुरआने करीम में जो आयतें अल्लह के होने को साबित करती हैं वही आयतें अल्लाह के एक होने को भी साबित करती हैं। इस्लामी फ़िलॉस्फ़ी और इस्लामी थियॉलोजी में इन दोनों बातों को अलग-अलग साबित किया गया है लेकिन क़ुरआन में ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है कि क़ुरआन ने एक जगह अल्लाह के होने को साबित किया हो और दूसरी जगह उसके एक होने को साबित किया हो। यह क़ुरआन का बहुत बड़ा कमाल है। क़ुरआन ने अल्लाह को कुछ इसी तरह से पहचनवाया है कि उसके बाद दो या दो से ज़्यादा ख़ुदाओं की कोई जगह नहीं बचती। क़ुरआन ने इस बात को इशारों में बताया है लेकिन हज़रत अली[अ०] ने नहजुल बलाग़ा में इसे पूरी तरह से खुलकर बता दिया है। यह क़ुरआन का एक बहुत बड़ा मोजिज़ा[1] है जिस से हज़रत

[1] चमत्कार

अली[अ०] ने पर्दा उठाया है। क़ुरआन के इस मोजिज़े को समझाना अपनी जगह ख़ुद एक दूसरा मोजिज़ा है।

बहरहाल यह दुनिया एक बड़े सटीक सिस्टम पर चल रही है और इसकी हर चीज़ एक दूसरे से जुड़ी हुई है यानी यह पूरी एक इकाई है। अब यह अलग बात है कि ख़ुद किसी चीज़ के अपने हिस्सों में तालमेल पाया भी जा सकता है और नहीं भी पाया जा सकता।

आइए! इस मिसाल को देखते हैंः

भेड़ों के झुंड में आपस में कोई जोड़ नहीं पाया जाता। झुंड की हर भेड़ अपने आप में एक अलग भेड़ है जो चल-फिर रही है, खा-पी रही है और दूसरे काम कर रही है। इन सब में बस इतना जोड़ दिखाई पड़ता है कि गदड़िया इन्हें हाँक कर एक साथ लिए फिरता है।

लेकिन इन में से हर भेड़ को अगर अलग-अलग देखा जाए तो हर भेड़ का बदन अरबों-खरबों Cells से मिलकर बना है। कुछ Cells आखों के लिए हैं, कुछ हाथ-पैरों के लिए, कुछ दिल के लिए और इसी तरह कुछ बदन के दूसरे हिस्सों के लिए... यह सारी Cells अपना-अपना काम कर रही हैं। इन में से किसी को भी दूसरे के बारे में कुछ भी पता नहीं है यानी न ख़ून की Cells को गोश्त की Cells की ख़बर है और न गोश्त की Cells को ख़ून की Cells के बारे में कुछ पता है। इन में किसी को भी नहीं पता कि यह सब एक ऐसी इकाई के काम में लगी हुई हैं जिसका नाम भेड़ है और ख़ुद उस इकाई की भी अपनी एक रूह[1] और ज़िंदगी है। इन Cells में से हर एक का भी अपना एक काम है और यह सब की सब मिलकर उस इकाई यानी भेड़ के काम को पूरा करने में लगी हुई हैं।

इस मिसाल को सामने रखकर देखा जाए तो यह पूरी दुनिया एक इकाई के रूप में दिखाई देती है जिसका बनाने वाला भी एक ही है जिसका नाम अल्लाह है।

---

[1] आत्मा

(5)

अल्लाह
रोज़ी-दोटी देने वाला है

अल्लाह के कामों में छेड़-छाड़

हो सकता है कि कुछ लोगों के दिमाग़ में यह शक पैदा हो जाए कि हम तो तौहीद को मानने वाले हैं, अल्लाह ने हमें पैदा किया है और वही हमें रोज़ी-रोटी भी देने वाला है और उधर ख़ुद क़ुरआन में भी अल्लाह ने एलान कर दिया है कि बेशक! रिज़्क (रोज़ी-रोटी) देने वाला सिर्फ़ अल्लाह है या ज़मीन पर चलने वाला कोई जानदार ऐसा नहीं है जिसकी रोज़ी अल्लाह के ज़िम्मे न हो।[1]

साथ ही जिस रोज़ी की अल्लाह ने ज़िम्मेदारी ली है उसमें वह सब कुछ आता है जिससे हर जानदार ज़िन्दा भी रहे और उसकी नस्ल भी चलती रहे। इस बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि आदमी को जो कुछ भी मिलने वाला है या जो कुछ भी उसके नसीब में है वह सब कुछ उसे अल्लाह की तरफ़ से अपने आप मिल जाएगा। इसलिए हमें न इस बारे में कुछ सोचने की ज़रूरत है और न ही कुछ करने की ज़रूरत,

---

[1] सूरए ज़ारियात/58, सूरए हूद/6

बल्कि इस बारे में कुछ सोचने की छूट भी नहीं है। अगर हम ने इस बारे में कुछ सोचा या कुछ करने की कोशिश की तो यह एक तरह से अल्लाह के कामों में छेड़-छाड़ होगी जिसकी तौहीद में मनाही है। अल्लाह के कामों को अल्लाह पर ही छोड़ देना चाहिए। हमारा काम तो बस यह है कि हम रोज़ी-रोटी के बारे में अल्लाह पर भरोसा करके सब कुछ उस पर छोड़ दें।

अगर किसी के दिल में यह शक पैदा हो जाए तो इसका जवाब यह है कि अगर हम अल्लाह को उस तरह पहचान लें जिस तरह उसे पहचानना चाहिए और उसे अपनी ही तरह का एक कमज़ोर इंसान समझें तो अपने आप हमारी समझ में यह बात आ जाएगी कि उसके राज़िक़ (रोज़ी-रोटी देने वाला) होने और रोज़ी-रोटी के लिए हमारी कोशिशों में कोई टकराव नहीं है। अगर हमारे ऊपर वाजिब किया गया है कि हम भी अपनी ज़िम्मेदारियों को जानने की कोशिश करें तो इस में भी कोई दिक़्क़त नहीं है। इस कोशिश का सब से निचला दर्जा यही है कि आदमी एक-दूसरे के हक़[1] और इंसाफ़ के मायनी को समझ जाए। अगर इन दोनों में कोई टकराव होता तो ख़ुद क़ुरआन अल्लाह को राज़िक़ बताने के बाद हमारे ऊपर कोशिश करने को कभी वाजिब न करता। अगर ऐसा होता तो अल्लाह के भेजे हुए नबी व इमाम कभी भी अपने हक़ के लिए इतनी कोशिशें न करते। अगर ऐसा होता तो कभी भी दीन में लोगों की ज़िम्मेदारियों और उनके हक़ के बारे में कोई हुक्म न होता। अगर ऐसा होता तो *इंफ़ाक़* का हुक्म न दिया गया होता। *इंफ़ाक़* रोज़ी-रोटी में दूसरों की मदद करने को ही तो कहते हैं। अगर कोई *इंफ़ाक़* करता है और दूसरों की रोज़ी-रोटी में उनकी मदद करता है तो क्या यह काम अल्लाह के राज़िक़ होने में रूकावट पैदा करना है कि रोज़ी-रोटी तो अल्लाह का काम है, हम इस में क्यों घुसें ?

---

[1] अधिकार

अल्लाह का मुक़ाबला आदमी से!

आदमी का नेचर कुछ इस तरह का है कि वह हर चीज़ को अपने आप से मिलाता है और जो भी हालत वह अपने अंदर देखता है वैसा ही वह दूसरों के अंदर भी मान बैठता है। बच्चे अपने बचपने में सोचते हैं कि जो एहसास उनके अंदर है वैसे ही दूसरी हर चीज़ के अंदर भी है। बच्चे सोचते हैं कि उनके खिलौने भी उन्हीं की तरह सोचते हैं जैसे अगर किसी खिलौने को एक तमांचा मार दिया जाए तो उसे भी चोट लगेगी। इसीलिए बच्चों को जब कभी ग़ुस्सा आता है तो वह अपने खिलौनों को ही मारना या पटख़ना शुरू कर देते हैं। अपने से ऊपर वालों और बड़ों के बारे में भी वह इसी तरह सोचते हैं।

तौहीद का मतलब अल्लाह को हर उस चीज़ से पाक मानना है जिससे उसे किसी दूसरे के साथ मिलाया जा सके। क़ुरआन ने सूरए शूरा की आयत/11 में साफ़-साफ़ कह दिया हैः

उसके जैसा कोई नहीं है।

हमें हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अगर हम अल्लाह को इल्म[1] वाला, क़ुदरत[2] वाला, सुनने वाला, देखने वाला, रोज़ी-रोटी देने वाला या ज़िंदगी देने वाला मानते हैं तो इन सब बातों में वह हमारे जैसा बिल्कुल नहीं है। अगर वह इल्म वाला है तो उसका इल्म हमारे इल्म से बिल्कुल अलग है जिसको एक-दूसरे से मिलाया भी नहीं जा सकता। इसी तरह उसकी दूसरी सिफ़तें[3] भी हैं जैसे क़ुदरत, इरादा वग़ैरा। अल्लाह का राज़िक़[4] होना भी इसी तरह है। कोई भी उसके जैसा रोज़ी-रोटी देने वाला नहीं हो सकता।

---

[1] ज्ञान
[2] ताक़त
[3] गुण
[4] रोज़ी देने वाला

अल्लाह का वादा

किसी से हमारे वादा करने और अल्लाह के वादा करने में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ होता है। अल्लाह राज़िक़ है, सब को रोज़ी देता है और ख़ुद उसने इस बात का वादा भी किया है लेकिन उसका यह वादा हमारे वादों की तरह बिल्कुल नहीं है। अगर कोई आदमी किसी वजह से किसी दूसरे आदमी की रोज़ी-रोटी का ज़िम्मेदार हो जाए तो यह एक अलग मामला है और अगर अल्लाह अपने बंदों की रोज़ी-रोटी का ज़िम्मेदार हो तो यह एक बिल्कुल अलग मामला है। इन दोनों को एक-दूसरे से मिलाया ही नहीं जा सकता। जैसा कि क़ुरआन ने कहा है कि हर जानदार की रोज़ी अल्लाह के ज़िम्मे है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिसने रोज़ी का वादा किया है वह ख़ुद ''अल्लाह'' है, हमारे जैसा कोई आदमी नहीं है। अल्लाह उस हस्ती का नाम है जिसने इस पूरी दुनिया और इस दुनिया के पूरे सिस्टम को बनाया है। हर-हर चीज़ को उसी ने बनाया है। उसका हर वादा हमारे वादों से बिल्कुल अलग और सच्चा होता है। हम जो भी वादा करते हैं या किसी चीज़ की ज़िम्मेदारी लेते हैं वह अपनी भलाई को ध्यान में रखकर लेते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि जिसने इस दुनिया और इस सिस्टम को बनाया है उसका वादा उस आदमी के वादे से बिल्कुल अलग होगा जो इस दुनिया और इस सिस्टम का ही हिस्सा है यानी जो इस दुनिया से बाहर निकल कर कुछ सोच ही नहीं सकता।

इसलिए यह देखना बहुत ज़रूरी है कि यह दुनिया किस सिस्टम और किस क़ानून पर चल रही है। अगर हम जानना चाहते हैं कि अल्लाह कैसा रोज़ी देने वाला है तो इसके लिए पहले हमें इस सिस्टम और उस क़ानून पर ध्यान देना होगा जो यहाँ लागू है।

हम सब अपनी इसी दुनिया और इसी सिस्टम का हिस्सा हैं। इस दुनिया में हम से हटकर और भी बहुत सी चीज़ें हैं जिनकी

अपनी-अपनी ड्युटी है। यह ड्युटियाँ इस सिस्टम के क़ानून की वजह से भी हो सकती हैं और इस्लामी क़ानून के हिसाब से भी, चाहे किसी भी वजह से हों यह सब अल्लाह के अन्नदाता होने का ही एक हिस्सा हैं। पेड़-पौधों का अपनी ज़रूरत की चीज़ों को अपने आप ले लेना, जानवरों व आदमियों का खाने-पीने का सिस्टम, जानदारों में पाया जाने वाला वह एहसास जिसकी वजह से वह अपने आप अपनी भूख मिटाने के लिए निकल पड़ते हैं, यह सब अल्लाह के अन्नदाता होने का ही सुबूत है। वह अल्लाह ही है जिसने पेड़-पौधों के अंदर इतना मज़बूत सिस्टम रखा है कि वह अपने आप हवा, पानी और दूसरी चीज़ें ले लेते हैं। वह अल्लाह ही है जिसने हर जानदार के अंदर एक ऐसा एहसास रख दिया है जिसकी वजह से वह अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपने आप उठ खड़ा होता है और इस कोशिश में लग जाता है कि बस किसी तरह से अपनी ज़रूरत को पूरा कर ले, जबकि इन जानदारों को इस बात का ध्यान भी नहीं होता कि उन्हें इन चीज़ों की ज़रूरत क्यों है या इस के पीछे कौन सा सिस्टम कारगर है।

अपने हक़ को पाने के लिए आदमी की अपनी समझ व एहसास, अपने हक़ को पाने और दूसरों के हक़ उन्हें देने के लिए दीन की तरफ़ से दी गई ड्युटी, अपने हक़ के लिए की जाने वाली कोशिशें, हक़ छीनने वालों के सामने डट जाना, अपने हक़ के लिए सोचना और उस पर ध्यान देना, इस बारे में किताबों का लिखा जाना और बात करना... यह सब का सब अल्लाह के अन्नदाता होने की ही निशानियाँ हैं। इसी लिए अल्लाह ने फ़रमाया है कि हर जानदार की रोज़ी-रोटी अल्लाह के हाथ में है।

अगर हर जानदार की रोज़ी-रोटी अल्लाह के हाथ में न होती तो फिर न यह सिस्टम होता, न हमारे अंदर कोई एहसास होता, न हमें किसी चीज़ की ज़रूरत होती, न ज़ायक़ा होता न मज़ा, न मिठास होती न कड़वाहट, न पेड़-पौधों की जड़ें ज़मीन में इतनी गहराई तक उतरी हुई होतीं और न

आदमियों व जानवरों में हाज़मे का कोई सिस्टम होता, न आदमी को अपने किसी हक़ का ध्यान होता और न इस बारे में दीन ने कोई हुक्म दिया होता, न आदमी इस बारे में कुछ सोचता और न इस पर किताबें लिखता। दुनिया का यह सारा हंगामा, यह शोर, यह उथल-पुथल और यह दौड़-भाग सिर्फ़ ''ऐ राज़िक़!'' (ऐ अन्नदाता!) की वजह से ही है जिसने दुनिया के इस सिस्टम को इसी रूप में बनाया है। अगर अल्लाह अन्नदाता न होता तो यह सब कुछ भी न होता और यह सब न होता तो फिर न पेड़-पौधे होते, न जानवर और न आदमी यानी कुछ भी न होता क्योंकि अल्लाह के अन्नदाता होने का बस यही मतलब है कि सब एक-दूसरे से मदद लेकर आख़िर में सब के सब अल्लाह से मदद लें। कोई भी हो और वह कहीं भी हो, उसे हर वक़्त मदद की ज़रूरत है।

इसलिए यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि चूँकि अल्लाह हमारी रोज़ी-रोटी का मालिक है इसलिए हमें इस बारे में कुछ सोचने की ज़रूरत ही नहीं है क्योंकि जैसा कि बताया गया है, अगर उस हिसाब से देखें तो इस बारे में हमारा सोचना और कोशिश करना अल्लाह के अन्नदाता होने की वजह से ही है। अगर अल्लाह हमारा अन्नदाता न होता तो हम में से कोई इस बारे में कुछ सोचता भी नहीं। अल्लाह के अन्नदाता होने की वजह से ही तो ऐसा है कि रोज़ी-रोटी और रोज़ी-रोटी की ज़रूरत वाले, दोनों एक-दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते। अपनी रोज़ी-रोटी पर ध्यान देना और कोशिश करना कहीं से कहीं तक अल्लाह के कामों से छेड़-छाड़ नहीं है क्योंकि अगर हम अल्लाह के कामों में छेड़-छाड़ कर सकते होते तो फिर इसका मतलब यह होता कि हम अल्लाह की जगह पर बैठे होते और उसी की तरह हम भी इस दुनिया को चला रहे होते या इस दुनिया के सिस्टम व क़ानूनों को ही बदल देते और यह एक ऐसा काम है जो हो ही नहीं सकता। उसके अन्दाता होने की वजह से ही हमारे अंदर रोज़ी-रोटी की ज़रूरत रखी गई है, हमारे अंदर उसके हुक्म की वजह से ही खाने-पीने का

एहसास पैदा होता है, उसके हुक्म की वजह से ही हमारी अक़्ल हमें इन चीज़ों के बारे में सोचने पर मजबूर करती है, उसके हुक्म की वजह से ही हमारे ऊपर एक-दूसरे के हक़ का ध्यान रखना वाजिब है... जब ऐसा है तो फिर रोज़ी-रोटी के लिए सोचना और कोशिश करना उसके काम में छेड़-छाड़ कैसे हो सकती है बल्कि सच तो यह है कि हम ऐसा करके उसके हुक्म पर ही चल रहे हैं। अगर हम इस बारे में न सोचें और कोई कोशिश न करें तो हमारे अंदर ठहराव आ जाएगा और आख़िर में हमें मौत भी आ दबोचेगी और यह सब अल्लाह का हुक्म न मानने की वजह से ही होगा।

अल्लाह ने ही हमें पैदा किया है और वही हमें रोज़ी-रोटी भी देता है। अल्लाह ख़ालिक़ भी है और राज़िक़ भी। ख़ालिक़ यानी हर चीज़ बस उसी ने बनाई है और राज़िक़ यानी उस ने हर चीज़ को इस तरह से बनाया है कि हर एक को रोज़ी-रोटी की ज़रूरत है और वही सब को रोज़ी-रोटी देता है। जिस किसी को भी रोज़ी-रोटी की ज़रूरत है उसे उस ने इस तरह से बनाया है कि कोई दूसरा उसे खिलाए ताकि वह ज़िंदा रह सके यानी पहला वाला दूसरे वाले को खा-पीकर एक तरह से उसे अपने बदन का हिस्सा बना ले। इसके बाद हो सकता है कि कोई तीसरा इस दूसरे वाले को किसी और रूप में अपने बदन का हिस्सा बना ले। रोज़ी-रोटी से ज़िंदा रहने वाले एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। हर वह जानदार जिसको रोज़ी-रोटी की ज़रूरत है वह किसी न किसी तरह एक दूसरे जानदार का खाना बन जाता है यानी जो कोई भी आज खा रहा है कल उसे भी खाया जाएगा।

यहाँ एक सवाल यह पैदा होता है कि आख़िर किसी चीज़ पर किसी का हक़ कैसे बनता है? वह कौन सा क़ानून है जिसकी वजह से हम कहते हैं कि इस चीज़ पर हमारा हक़ है या उस चीज़ पर तुम्हारा?

इस सवाल का जवाब यह है कि जिस सिस्टम पर यह दुनिया बनाई गई है और चल रही है उस में हर चीज़ को एक

दूसरी चीज़ के लिए बनाया गया है। जैसे हम किसी घर को इसलिए अपना घर कहते हैं क्योंकि हम ने ही उस घर को बनाया है और कभी इसलिए भी उस घर को अपना घर कहते हैं क्योंकि जिसने उसे बनाया था उसने हमारे लिए ही बनाया था। अब जब इस तरह के घर पर क़ब्ज़ा दिखाने का वक़्त आता है तो हम कहते हैं कि यह घर हमारा है क्योंकि इसे हम ने बनाया था या बनाने वाले ने हमारे लिए ही बनाया था।

अगर कोई इस दुनिया के इस शानदार सिस्टम और यहाँ फैली हुई अनगिनत चीज़ों पर गहराई से एक नज़र डाले तो अपने आप उसकी समझ में आ जाएगा कि यह दुनिया कुछ ऐसी ही है कि यहाँ कुछ चीज़ों को कुछ दूसरी चीज़ों के लिए ही बनाया गया है। इस दुनिया में जन्म लेने वाला बच्चा और उसकी माँ के सीने में उसके लिए दूध का होना दो बिल्कुल अलग-अलग चीज़ें हैं लेकिन बच्चे की ज़रूरत, उसकी भूख, इस दूध का बच्चे के हाज़मे के लिए सब से अच्छा होना और दूध के इस कारख़ाने का इतना नपा-तुला होना हमें बताता है कि यह दोनों चीज़ें एक दूसरे के लिए ही बनाई गई हैं। कोई नहीं कह सकता कि यह दूध बेकार पैदा किया गया है और इसका पहले से कोई काम नहीं था। बेशक! यह दूध बच्चे के लिए ही बनाया गया है। जिस सिस्टम पर बच्चे और उसकी माँ को बनाया गया है वह सिस्टम अपने आप इन दोनों को एक-दूसरे से जोड़ देता है। जब तक बच्चा, बच्चा है और ख़ुद से कुछ खा-पी नहीं सकता, तब तक उसकी रोज़ी-रोटी उसकी माँ के दूध में रख दी गई है। धीरे-धीरे जब वह बड़ा होने लगता है, हाथ-पैर मारने लगता है, चलने लगता है, उस में समझ आने लगती है और वह अच्छे-बुरे में फ़र्क़ करने लगता है तो अब उसके खाने-पीने का तरीक़ा भी बदल जाता है। अब उसका खाना-पानी उठाकर उससे थोड़ा दूर रख दिया जाता है ताकि बच्चा वहाँ तक जाए और ख़ुद आगे बढ़कर खाए-पिए जबकि यह पहले बिल्कुल उसके मुँह के पास था। बहरहाल रोज़ी-रोटी और जिसे इसकी ज़रूरत है, दोनों में एक

तरह का रिश्ता बना हुआ है। कभी ऐसा होता है कि ख़ुद रोज़ी आदमी की ज़रूरत को पूरा करने के लिए उसके पास चली जाती है जैसे बारिश की बूँदें जो बादलों पर सवार होकर सूखी ज़मीनों की प्यास बुझाने ख़ुद जाती हैं:

> वह अल्लाह है जो हवाओं को अपनी रहमत की ख़ुशख़बरी बनाकर भेजता है। यहाँ तक कि जब हवाएं भारी बादलों को उठा लेती हैं तो हम उन्हें बंजर ज़मीनों को उपजाऊ बनाने के लिए ले जाते हैं और फिर पानी बरसा देते हैं और इस से तरह-तरह के फल पैदा करते हैं।[1]

इसके उलट ऐसा भी होता है कि जिसको रोज़ी-रोटी चाहिए होती है उसकी भी ड्युटी होती है कि वह भी अपनी रोज़ी-रोटी को ढूँढे और उसके पास जाए। पेड़-पौधे अपना खाना-पानी ज़मीन से लेते हैं और इनका खाना-पानी सिर्फ़ पानी, मिट्टी, रोशनी और हवा ही में होता है। इस से हटकर यह कहीं और से अपना खाना-पानी नहीं ले सकते। इन से बस इतना ही कहा गया है और यह इतना ही कर रहे हैं यानी इनके नेचर में यह बात रख दी गई है कि वह अपने खाने की तरफ़ ख़ुद से बढ़ें और अपनी ज़रूरत भर खाना-पानी ले लें। अपना खाना-पानी कैसे लेना है यह भी उन्हें बता दिया गया है।

जानवरों को एक दूसरी तरह से बनाया गया है। ज़मीन की चीज़ें उनका पेट भरने के लिए काफ़ी नहीं हैं। इसीलिए पेड़-पौधों की तरह इन के पैर ज़मीन से चिपके हुए नहीं हैं। इन्हें अपना पेट भरने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाने की पूरी छूट है। इन्हें पेड़-पौधों से बढ़कर समझ दी गई है। इसीलिए इनके अंदर Feelings, Senses & Desires भी रखी गई हैं। यह अपनी Feelings & Needs की वजह से एक जगह से दूसरी जगह आराम से आ-जा सकते हैं ताकि ज़रूरत की दूसरी चीज़ों को भी खा-पी सकें जो हर जगह नहीं मिलती हैं।

[1] सूरए आराफ़/53

जानवरों का पेट पेड़-पौधों की तरह बस ज़मीन की तरी से ही नहीं भर सकता बल्कि इन्हें अपनी प्यास बुझाने के लिए पानी भी चाहिए होता है। फिर पानी भी हर जगह नहीं है। इनको पानी की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह जाना होता है। यह पेड़-पौधों की तरह ख़ुद को सर्दी-गर्मी से नहीं बचा सकते, इसलिए इन्हें रहने के लिए जगह भी चाहिए। इनकी इन ज़रूरतों की वजह से इन्हें देखने, सुनने, चखने और छूने की ताक़त दी गई है। इन जानदारों के अंदर ज़िंदगी बिताने के लिए बड़ा ही अजीब सिस्टम रखा गया है। कुछ जानदार तो इस मामले में ऐसे भी हैं कि आदमी दाँतों तले उँगली दबा लेता है जैसे चींटी जिसके बारे में हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैं:

> ज़रा चींटी पर ध्यान दो! इसका बदन इतना छोटा है कि जल्दी से दिखता भी नहीं है और न ही गहरी निगाहें इस तक पहुँच पाती हैं, फिर भी यह ज़मीन पर रेंगती फिरती है और अपना खाना-पानी ढूँढने के लिए इधर से उधर भागी फिरती है। नन्हें-नन्हें दानों को अपने घरों के अंदर ले जाती है और फिर उन्हें वहाँ बड़े अच्छे ढंग से संभाल कर स्टोर कर लेती है, गर्मी के मौसम में सर्दी के मौसम के लिए। जब अपनी सुरंग में आख़िरी बार घुसती है तो उस वक़्त तक के लिए अपना खाना-पानी जमा कर लेती है जब उसे अगले मौसम में दोबारा बाहर निकलना होता है। अगर तुम खाने-पीने लिए उसके छोटे से मुँह से हलक़ तक के सिस्टम पर ध्यान दो कि वह किस तरह खाती है, हज़्म करती है और ताक़त लेती है और अगर तुम उसके पेट के चारों तरफ़ हड्डी जैसे काँटों को देखो और अगर सर पर लगी उसकी आँखों पर ध्यान दो और अगर उसके सुनने

> के सिस्टम को देखो तो अपने आप समझ जाओगे कि अल्लाह ने इसे कितना अजीब बनाया है।[1]

यह था इंसानों के साथ-साथ दूसरे जानदारों तक उनका खाना-पानी पहुँचने का एक नमूना।

आदमी और उसकी रोज़ी-रोटी

अब आइए! ज़रा आदमी को भी देखते हैं। आदमी तो दूसरे सारे जानदारों से कहीं ऊँचे दर्जे वाला है। इसलिए जो कुछ दूसरे जानदारों की रोज़ी-रोटी के लिए काफ़ी था वह इसके लिए काफ़ी नहीं है। आदमी की रोज़ी-रोटी का मामला एक दूसरी ही तरह का है। यहाँ रोज़ी-रोटी और आदमी के बीच की दूरी बहुत ज़्यादा है इसलिए अपनी रोज़ी-रोटी तक पहुँचने के लिए आदमी को रिसोर्सेस भी ज़्यादा दिए गए हैं। आदमी को रास्ता दिखाने का सिस्टम भी बहुत शानदार है। उसे रास्ता दिखाने के लिए नबी और रसूल भेजे गए हैं। साथ ही समझ भी बढ़ाकर दी गई है। उसे अल्लाह की तरफ़ से ज़िम्मेदारियाँ भी दी गई हैं और यह सब अल्लाह के पालनहार होने की वजह से ही है।

इसलिए अगर कहा जाता है कि जिसने दाँत दिए हैं वही रोटी भी देगा तो यह बात बिल्कुल ठीक है लेकिन इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि सब कुछ आदमी के लिए पहले से तैयार रखा हुआ है और उसे बस खाना है बल्कि इसका मतलब यह है कि उसके दाँतों और रोटी के बीच एक गहरा रिश्ता पाया जाता है। अगर रोटी न होती तो दाँत भी न होते और अगर दाँत और दाँत वाला न होता तो रोटी भी न होती। इसका मतलब यह हुआ कि रोटी, रोटी खाने वाले आदमी, अपनी रोटी को ढूँढने और तैयार करने के सिस्टम, उस तक पहुँचने के रास्ते, खाना खाने और उसे हज़म करने के बीच

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/227

एक अटूट रिश्ता पाया जाता है। जिसने आदमी को इस दुनिया में भेजा है और उसे रोटी दी है उसी ने रोटी यानी खाई जाने वाली चीज़ों को भी बनाया है। अपनी रोटी-रोज़ी तक कैसे पहुँचना है इसकी समझ, ताक़त और ड्युटी भी देकर भेजा है।

इसलिए अगर अल्लाह ने दाँत भी दिए हैं और रोटी भी दी है तो इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि अब हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएं और अपनी रोज़ी-रोटी के लिए कुछ भी न करें। नहीं! ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि दाँत, रोटी, काम करने की ताक़त, समझ और रोज़ी-रोटी तक पहुँचने के लिए दीन की तरफ़ से दी गई ड्युटी सब एक ही सिस्टम के हिस्से हैं और यह सब अल्लाह के पालनहार होने की वजह से ही है। इसलिए जब हम रोज़ी-रोटी और अपने बीच के रिश्ते को पहचान लें, रोज़ी-रोटी तक पहुँचाने वाले रिसोर्सेस को भी जान लें और इस बारे में अपनी दीनी ड्युटी को भी समझ लें तो फिर ज़रूरी है कि आगे बढ़ें और अपनी रोज़ी-रोटी तक पहुँचने की कोशिश करें। जो सब से अच्छा रास्ता हो उस पर चलते हुए अपनी रोज़ी-रोटी कमाएं। अपनी ताक़त इस काम में लगाएं और अल्लाह पर पूरी तरह से भरोसा करें।

तवक्कुल (भरोसा)

तवक्कुल किसे कहते हैं?

तवक्कुल का मतलब होता है कि आदमी बस वही काम करे जो सही हो और इस रास्ते में अल्लाह पर भरोसा भी करे। अल्लाह भी उन लोगों का साथ देता है जो सही बात का साथ देने वाले होते हैं। तवक्कुल उस गारंटी का नाम है जो अल्लाह ने उन लोगों को दी है जो हमेशा सही बात का साथ देते हैं। इस मिसाल को देखिएः

आप किसी दुकान पर जाते हैं और कोई चीज़ ख़रीदते हैं। दुकानदार उस चीज़ के सही होने की गारंटी लेता है और

आपको भरोसा भी दिलाता है कि ले लीजिए! चीज़ अच्छी है। आप भी उसकी बात पर भरोसा कर लेते हैं यानी यह मान लेते हैं कि दुकानदार ठीक कह रहा है और यह चीज़ बिल्कुल सही है। सही रास्ता वह रास्ता है जो नबियों व रसूलों ने हमें पहचनवाया है और उन्होंने गारंटी ली है कि जो भी अल्लाह के इस रास्ते पर चलेगा वह कामयाब हो जाएगा। अल्लाह ने इस दुनिया को कुछ ऐसा ही बनाया है कि जो लोग भी सही रास्ते पर चलते हैं और सही बात का साथ देते हैं यह दुनिया भी उनका साथ देने लगती है। हक़ (True Path) के साथ हमेशा एक रूहानी हिमायत (Spritual Support) मौजूद रहती है।

नबियों ने कहा है कि अल्लाह पर भरोसा करो और अल्लाह के रास्ते पर चलते हुए आगे बढ़ने की कोशिश करो। अल्लाह पर भरोसा करते हुए अपनी रोज़ी-रोटी ख़ुद ढूंढो और हलाल रास्ते से न भटको यानी अल्लाह के इस रास्ते पर चलोगे तो अल्लाह की मदद तुम्हें हमेशा मिलती रहेगी।

तवक्कुल का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि आदमी कोई काम ही न करे और अपने हाथ-पैरों की छुट्टी कर दे। एक जगह बैठ जाए और बस अल्लाह पर भरोसा करता रहे कि ख़ुद अल्लाह आएगा और उसके सारे काम कर देगा। काम न करने और कोशिश न करने के लिए तो कोई गारंटी नहीं चाहिए। जब आदमी कुछ करेगा ही नहीं तो फिर गारंटी कैसी?

अगर हम क़ुरआन की आयतों पर थोड़ा सा ध्यान दें तो हमें तवक्कुल के यही मायनी दिखेंगे। क़ुरआन कहता है कि सही रास्ते पर चलने से मत डरो और अल्लाह पर भरोसा करो। आइए! इस बारे में क़ुरआन की दो आयतों पर नज़र डालते हैं।

एक वह आयत है जिसको अल्लाह ने हज़रत नूह[अ०] के बाद के सभी नबियों की ज़बानी सुनाया है। जब लोग उन नबियों के मुक़ाबले पर आ जाते थे और उनके रास्ते को रोक देते थे तो वह नबी उन लोगों से कहते थेः

> हम क्यों अल्लाह पर भरोसा न करें जबकि उसी ने हमें हमारे रास्तों का पता बताया है। हम हर हाल में तुम्हारी सख़्तियों पर सब्र करेंगे (और इसी रास्ते पर चलते रहेंगे) और भरोसा करने वाले तो अल्लाह ही पर भरोसा करते हैं।[1]

यह आयत साफ़-साफ़ बता रही है कि तवक्कुल एक अच्छी चीज़ है। आदमी के सामने रास्ता है, उस रास्ते पर उसे चलना है और इस रास्ते में उसे तरह-तरह की मुसीबतें भी झेलना पड़ेंगी जो उसे कमज़ोर भी कर सकती हैं लेकिन नबियों व रसूलों ने कहा कि हम ज़ालिमों से नहीं घबराएंगे क्योंकि हम अल्लाह पर भरोसा करते है। इसलिए हम इसी रास्ते पर चलेंगे और अपनी डगर पाकर ही रहेंगे।

दूसरी आयत ख़ुद हमारे आख़िरी रसूल[स०] के बारे में है। यह आयत भी साफ़-साफ़ बता रही है कि तवक्कुल एक अच्छी चीज़ है:

> ऐ रसूल! जब आप फ़ैसला कर लें तो फिर अल्लाह पर भरोसा कीजिए क्योंकि वह भरोसा करने वालों को पसंद करता है।[2]

कहने का मतलब यह है कि ऐ रसूल! जैसे ही किसी काम के लिए आप कोई फ़ैसला कर लें तो फिर अपने अल्लाह पर भरोसा कीजिए और आगे बढ़ जाइए।

आयत रसूल[स०] से यह नहीं कह रही है कि कोई काम करना हो तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहिए और अल्लाह पर भरोसा करते रहिए बल्कि कह रही है कि अपना काम कीजिए और अल्लाह पर भरोसा कीजिए।

यह है अल्लाह के अन्नदाता होने और उसके ऊपर तवक्कुल या भरोसा करने का मतलब।

---

[1] सूरए इब्राहीम/12

[2] सूरए आले इमरान/159

(6)

मुसीबतें क्यों आती हैं?

मुसीबतें भी एक तरह से अल्लाह का करम है

क़ुरआन की आयतों और हदीसों में यह बात जगह-जगह पढ़ने को मिलती है कि अल्लाह ने उस रसूल या नबी को मुसीबतों में डाल दिया था या यह कि अल्लाह मुसीबतों में उन्हीं लोगों को डालता है जिन पर वह अपनी रहमत और अपने करम का साया करना चाहता है या यह कि मुसीबतें आदमी के लिए अल्लाह का तोहफ़ा हैं।

जैसे यह हदीस हैः

> अल्लाह जब अपने किसी मोमिन बंदे को याद करता है और उस पर करम करना चाहता है तो उसकी तरफ़ कोई मुसीबत भेज देता है बिल्कुल उसी तरह जैसे जब कोई आदमी कहीं सफ़र पर जाता है तो वह वहाँ से अपने घर वालों की याद में उनके लिए कोई न कोई तोहफ़ा भेज देता है।[1]

---

[1] काफ़ी, जि. 2, पेज. 255

एक दूसरी हदीस इस तरह से हैः

> जब अल्लाह अपने किसी बंदे से मोहब्बत करता है तो उसे मुसीबतों में डुबो देता है।[1]

किताबों में लिखा है कि रसूले इस्लाम[स०] कभी किसी ऐसे आदमी के साथ खाना नहीं खाते थे जिसने कभी मुसीबतों का मज़ा ही न चखा हो। रसूले इस्लाम[स०] का मानना था कि यह अल्लाह से दूर होने की निशानी है।

यहाँ पर हर एक के दिमाग़ में सब से पहला सवाल यह जन्म लेता है कि यह क्या बात हुई कि अल्लाह जिस से मोहब्बत करता है उसे मसीबतों में फंसा देता है? जबकि मोहब्बत तो यह होती है कि जिससे मोहब्बत की जाती है उसके लिए आसानियाँ पैदा की जाती हैं, न कि मुसीबतें।

क़ुरआन और हदीस में मुसीबतों का एक और फ़ाएदा भी बताया गया है और वह है ''इम्तेहान''। अल्लाह मुसीबतें देकर अपने बंदों का इम्तेहान लेता है।

इस से एक और सवाल पैदा हो जाता है कि भला मुसीबतें देकर इम्तेहान कैसे लिया जा सकता है? क्या अल्लाह को लोगों के दिलों का हाल नहीं पता कि वह इम्तेहान लेकर उन्हें आज़माएगा? क्या ख़ुद क़ुरआन ही ने नहीं कहा है कि इस दुनिया की हर चीज़ के बारे में अल्लाह जानता है? जब ऐसा है तो फिर इम्तेहान का क्या मतलब?

मुसीबतें आदमी को मज़बूत बनाती हैं

इन दोनों सवालों का जवाब तब समझ में आएगा जब हमें मुसीबतों व दुखों से मिलने वाली भलाई और इन से आदमी के ऊपर पड़ने वाला असर पता चल जाएगा।

---

[1] काफ़ी, जि. 2, पेज. 253

नेचर का क़ानून कुछ ऐसा ही है कि यहाँ आदमी की बहुत सारी सलाहियतें और कमाल (Skills & Perfection) उसी वक़्त खुल कर सामने आ पाते हैं जब वह मुसीबतों व दुखों में घिर जाता है या जब वह बलाओं व मुश्किलों में फंस जाता है।

ऐसा नहीं है कि मुसीबतें आदमी की सलाहियतों[1] को उभार कर बाहर ले आती हैं जैसे कोई क़ीमती मोती सेकड़ों टन मिट्टी के नीचे दबा हो और उसे बाहर निकाल लिया जाए। नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है बल्कि मामला इस से भी कहीं बड़ा है। मुसीबतें आदमी की कमियों को दूर करके उसे मुकम्मल (Perfect) बना देती हैं बल्कि सिरे से आदमी को बदल ही देती हैं और वह बिल्कुल एक नया आदमी बन जाता है जैसे किसी धातु को बदलकर एक नई धातु बना दिया जाए। मुसीबतें एक कमज़ोर आदमी को मज़बूत आदमी में बदल देती हैं, नीचे से उठाकर ऊपर ले जाती हैं और कच्चे को पक्का बना देती हैं, सारी गंदगियाँ बाहर निकाल कर फेंक देती हैं और आदमी बिल्कुल खरा हो जाता है, मुसीबतें उसकी रूह[2] पर लगे ज़ंग को छुड़ा देती हैं, सुस्ती व काहिली को दूर कर देती हैं और आदमी को तेज़, होशयार व समझदार बना देती हैं।

अगर इन बातों को सामने रखा जाए तो फिर कोई इन मुसीबतों की वजह से अल्लाह को बुरा नहीं कहेगा बल्कि यह तो मुसीबतों के रूप में हमारे ऊपर अल्लाह का करम और उसकी रहमत है।

अगर इन बातों को ध्यान में रखा जाए तो हमें पहले वाले सवाल का जवाब भी मिल जाएगा।

---

[1] गुणों

[2] आत्मा

अल्लाह इम्तेहान क्यों लेता है?

दूसरा सवाल यह था कि जब अल्लाह हमारे बारे में सब कुछ जानता ही है तो फिर वह हमारा इम्तेहान लेता क्यों है ?

जो कुछ ऊपर कहा गया है उस से इस सवाल का ठीक-ठाक जवाब भी मिल जाता है लेकिन आइए! ज़रा और गहराई में जाते हैंः

कभी इम्तेहान इसलिए होता है कि जिस चीज़ के बारे में हम जानते हैं उसके बारे में ज़रा और जान लें। इस काम के लिए किसी एक चीज़ को एक पैमाना या तराज़ू मान लिया जाता है जैसे अगर हम किसी चीज़ का वज़न जानना चाहें तो उसे तराज़ू में रखकर तौल लेते हैं और हमें उसका सही वज़न पता चल जाता है। यहाँ पर तराज़ू वज़न करने के लिए सिर्फ़ एक टूल है। उसका काम बस इतना सा है कि वह हमें हमारी चीज़ का सही वज़न बता दे। तराज़ू हमारी किसी भी चीज़ को घटा या बढ़ा नहीं सकता। थर्मामीटर का काम यह होता है कि वह हमें हमारे बदन का टम्प्रेचर बता देता है। मीटर का काम यह है कि वह किसी भी चीज़ की लम्बाई या चौड़ाई बताता है। ऐसे ही दूसरे सारे पैमाने भी हैं।

अगर इम्तेहान का हम यह मतलब निकालें तो ऐसा सोचना अल्लाह के बारे में कहीं से कहीं तक ठीक नहीं है।

इससे हटकर इम्तेहान का एक दूसरा मतलब और भी होता है। इम्तेहान यानी किसी के छुपे हुए गुणों या सलाहियतों को बाहर निकालना। अल्लाह इम्तेहान लेता है, इसका मतलब यह है कि वह इम्तेहान लेकर आदमी के छुपे हुए गुणों को बाहर निकाल कर उसे उस जगह पर पहुँचा देता है जिसके लिए उसे इस दुनिया में भेजा गया था। मुसीबतों और बलाओं का असर यह नहीं है कि इन से आदमी का वज़न या साइज़ नापा जाता है बल्कि इन से आदमी का दर्जा बढ़ाया जाता है और उसके अंदर निखार लाया जाता है। अल्लाह किसी आदमी को जानने या समझने के लिए उसका इम्तेहान नहीं लेता है बल्कि वह

आदमी को इसलिए मुसीबतों में डाल देता है ताकि उस आदमी की पर्सनालिटी और उसकी रूहानी[1] ताक़त को बढ़ा दिया जाए। वह यह जानने के लिए कभी किसी का इम्तेहान नहीं लेता कि कौन जहन्नमी[2] है और कौन जन्नती[3] बल्कि वह इसलिए आदमी को मुसीबतों में डाल देता है और उसका इम्तेहान लेता है ताकि जो जन्नत की तरफ़ जाना चाहता है वह इन्हीं मुसीबतों से लड़-लड़कर अपने आप को जन्नत में जाने लायक़ बना ले और जो इस काम का नहीं है वह यहीं पड़ा रह जाए।

हज़रत अली[अ०] ने बसरा शहर के गवर्नर उस्मान बिन हुनैफ़ को एक ख़त लिखा था जिसमें पहले तो उन्हें यह समझाया था कि नेमतों में डूबकर कहीं अपनी ड्युटी को न भूल जाना, फिर हल्की-फुल्की ज़िंदगी के फ़ाएदे गिनाने के बाद यह भी लिखा था कि देखो! मैं किस तरह जौ की सूखी रोटी पर गुज़र-बसर कर लेता हूँ और ख़ुद को हर तरह के आराम से दूर रखता हूँ। इसके बाद फ़रमाया थाः

> हो सकता है कि तुम से कोई कहे कि अगर अबू तालिब का बेटा जौ की सूखी रोटियाँ खा-खाकर जी रहा है तो उसके अंदर तो इतनी ताक़त भी नहीं होगी कि किसी बहादुर आदमी से लड़ भी सके?

अगर देखा जाए तो बात सही भी लगती है कि ऐसी ज़िंदगी आदमी को कमज़ोर बना देती है लेकिन इमाम अली[अ०] अपने इस सवाल का ख़ुद ही जवाब भी देते हैं कि यह लोग ग़लत सोचते हैं क्योंकि कड़ी व कठिन ज़िंदगी बिताने से आदमी की ताक़त बिल्कुल कम नहीं होती बल्कि यह तो आराम भरी ज़िंदगी है जिसकी वजह से आदमी की ताक़त कम हो जाती है।

इसके बाद फ़रमायाः

---

[1] आत्मिक
[2] नर्क वाला
[3] स्वर्ग वाला

> याद रखो! जंगल के पेड़ की लकड़ी ज़्यादा मज़बूत होती है लेकिन जिन पेड़-पौधों को माली की देख-रेख मिल जाती है उनकी छाल कमज़ोर और टहनियाँ पतली होती हैं। इसके मुक़ाबले में मैदानों की लकड़ियों में आग ज़्यादा तेज़ी से भड़कती हैं और देर में बुझती हैं।[1]

जो लोग कठिनाईयों और मुसीबतों में ज़िंदगी बिताते हैं वह उन लोगों के मुक़ाबले में ज़्यादा ताक़त वाले होते हैं जो एक आराम भरी ज़िंदगी जीते हैं। जो एनर्जी ख़ुद आदमी के अंदर से फूटती है और जो बाहर से मदद लेकर जन्म लेती है, उन दोनों में बहुत फ़र्क़ होता है। अच्छा यही है कि आदमी के अंदर पाई जाने वाली अनगिनत सलाहियतें और गुण सारी रूकावटों को तोड़ते हुए ख़ुद अंदर से फूटें।

इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> यह मत कहो कि ऐ अल्लाह! मुझे मुसीबतों और इम्तेहानों से छुटकरा दे दे क्योंकि ऐसा तो कोई भी नहीं है जिसके ऊपर मुसीबतें न आएं। इसलिए जिसे भी दुआ माँगना हो वह यह दुआ माँगे कि ऐ अल्लाह! मुझे ऐसी मुसीबतों और इम्तेहानों से छुटकारा दे दे जिन से मेरे पैर डगमगा जाएं।[2]

लाड-प्यार में पलना

जितना मुसीबतों और कठिनाईयों में रहने और उनसे लड़ने में भलाई है उतना ही इन से बचने में नुक़सान है। इसीलिए साइकॉलोजी वालों ने कहा है कि बच्चों के साथ सब से बड़ी दुश्मनी वह दुश्मनी होती है जो कुछ नासमझ माँ-बाप

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़त/45
[2] नहजुल बलाग़ा, हिकमत/90

प्यार-मोहब्बत या लाड-प्यार के नाम पर अपने बच्चों के साथ कर बैठते हैं यानी अपने बच्चों पर बेहिसाब प्यार लुटाना, उन्हें हर वक़्त हाथों पर उठाए रहना और बस गोदियों में पालना। यह वह बातें हैं जो बच्चे को बिल्कुल बेकार और कमज़ोर बना देती हैं। ज़िंदगी की इस दौड़ में ऐसे बच्चे दूसरों से बहुत पीछे रह जाते हैं। ज़रूरत से ज़्यादा प्यार-मोहब्बत में पले बच्चे ज़रा सी मुसीबत आते ही हिम्मत खो बैठते हैं और ज़रा से हालात बदलते ही हाथ-पैर छोड़ देते हैं। ऐसे बच्चों की हालत उस आदमी की तरह होती है जिसने अपनी पूरी ज़िंदगी में कभी नदी के अंदर अपना पैर भी न रखा हो, जिसे तैरना भी न आता हो और अचानक उसे उठाकर नदी के अंदर फेंक दिया जाए। जिसे तैरना ही नहीं आता, वह अगर पहली बार दरिया में उतरेगा तो डूब जाएगा और तैरना भी कोई ऐसा काम नहीं है जो सीखे बिना आ जाए। फिर सीखने के लिए भी नदी ही के पास जाना पड़ेगा। अगर कोई तैरना सीखना चाहता है तो उसे नदी में घुसना ही पड़ेगा। तब जाकर धीरे-धीरे वह तैरना सीख पाएगा।

अब फिर से इस हदीस को देखिएः

> अल्लाह जब अपने किसी बन्दे से मोहब्बत करता है तो उसे मुसीबतों और बलाओं में डुबो देता है।[1]

अल्लाह ऐसा क्यों करता है?

अल्लाह ऐसा इसलिए करता है ताकि आदमी मुसीबतों से बाहर निकलने और बलाओं के समुद्र में तैरने का ढंग सीख जाए। इस से हटकर दूसरा और कोई रास्ता नहीं है। यह तो अल्लाह की हम से मोहब्बत और हमारे ऊपर उसका करम है कि वह हमें मुसीबतों में डालकर मुसीबतों व कठिनाइयों के समुद्र से तैरकर बाहर निकलने का ढंग सिखाना चाहता है। अगर इस हिसाब से देखा जाए तो मुसीबतें या बलाएं अल्लाह की मोहब्बत की निशानियाँ हैं। इससे हटकर और कुछ नहीं हैं।

---

[1] काफ़ी, जि. 2, पेज. 253

कुछ परिंदे[1] ऐसे भी होते हैं कि जब उनके बच्चों के पर निकल आते हैं तो वह अपने बच्चों को उड़ना सिखाने के लिए उन्हें घोंसले से निकालकर बाहर ले आते हैं। फिर आसमान में ऊपर ले जाकर एकदम से नीचे छोड़ देते हैं। बच्चा पहले तो बहुत देर तक अपने पर फड़फड़ा-फड़फड़ाकर नीचे गिरने से बचने की कोशिश करता है लेकिन जब थक जाता है तो हार मान लेता है। जैसे ही वह नीचे गिरने लगता है उसकी माँ उसे फ़ौरन अपने परों में संभाल लेती है और कुछ देर के बाद फिर उसे उसी ऊँचाई से नीचे छोड़ देती है। बच्चा दोबारा से अपने परों के सहारे नीचे गिरने से बचने की कोशिश करता है लेकिन फिर थक कर मायूस हो जाता है। जैसे ही पूरी तरह से थक जाता है उसकी माँ फिर उसे अपने परों में भरकर अपने साथ उड़ा ले जाती है। इसी तरह कई बार करती है और आख़िर में उसका बच्चा उड़ना सीख जाता है।

यह एक नेचुरल क़ानून है जिस पर आदमी तो आदमी, परिंदे तक चलते हैं। बच्चों को बचपन से ही कठिनाइयों और मुश्किलों की आदत होना चाहिए लेकिन आमतौर पर आदमी इस नेचुरल क़ानून के उलट चलता है। पैसे वाले लोग समझते हैं कि काम करना तो बस ग़रीबों का काम है इसलिए वह ख़ुद भी कठिन काम करने से बचते हैं और अपने बच्चों को भी दूर रखते हैं जिसकी वजह से उनके बच्चे ग़रीबों के बच्चों के मुक़बाले में कमज़ोर होते हैं।

एक बड़े फ़िलास्फ़र Jean-Jacques Rousseau ने अपनी किताब Emile, or On Education में लिखा हैः

> अगर लोग ज़िंदगी भर उसी जगह पर रहते जहाँ उनका जन्म हुआ है, अगर पूरे साल में बस एक ही मौसम होता, अगर लोग अपने हालात बिल्कुल भी न बदल पाते तो बच्चों की इस तरह की परवरिश फिर भी ठीक मानी जा सकती थी लेकिन लोगों के आए

[1] पशु-पक्षी

> दिन बदलते हालात को देखा जाए तो हमें मानना पड़ेगा कि इस से ज़्यादा ग़लत और कोई चीज़ है ही नहीं कि बच्चे को इस तरह से पाला-पोसा जाए कि बस वह अपने कमरे में बंद रहे और हर पल नौकर-चाकर उसके आगे-पीछे लगे रहें। इस हाल में अगर वह बेचारा अपना पैर भी नीचे रख दे या ऊपर से नीचे आना चाहे तो आ भी नहीं पाएगा।

आगे चलकर रूसो लिखते हैंः

> अगर बदन को ज़्यादा आराम दे दिया जाए तो रूह (आत्मा) बेकार हो जाती है। जिस आदमी को दुख-दर्द के बारे में कुछ पता ही न हो ऐसा आदमी न मोहब्बत की मिठास का एहसास कर सकता है और न हमदर्दी के मज़े का। ऐसे आदमी के दिल पर किसी भी चीज़ का असर नहीं हो पाता। इसलिए ऐसा आदमी लोगों के बीच रह ही नहीं सकता। ऐसा आदमी लोगों के बीच में एक अन्जान आदमी की तरह होता है।

कठिन इबादतों का फ़ाएदा

इस्लाम ने हमें बहुत सी इबादतों का हुक्म दिया है। यह सारी इबादतें असल में एक तरह की रूहानी एक्सर्साइज़ हैं यानी एक तरह से मुश्किलों और मुसीबतों का सामना करना है। कुछ इबादतें तो बहुत ही कठिन हैं।

जिहाद उन्हीं बहुत कठिन इबादतों में से एक इबादत है। आराम भरी ज़िंदगी से इसका कोई जोड़ नहीं है।

रसूले इस्लाम[स०] की एक हदीस हैः

> जो दीन के लिए न लड़ा हो या जिसके दिल में दीन के लिए लड़ने की चाहत तक भी न हो तो ऐसे

> आदमी की मौत एक तरह से मुनाफ़िक़त (पाखंड) की मौत होगी।

आदमी के अंदर ईमान की कुछ कमज़ोरियाँ या कमियाँ ऐसी हैं जिन्हें बस जिहाद जैसी इबादत ही दूर कर सकती है। कुछ अच्छाईयाँ ऐसी हैं जो जंग के मैदान में ही हाथ आ सकती हैं। किताबें पढ़ने या किसी कोने में बैठ जाने से बहादुरी नहीं मिलती। इसके लिए घर से बाहर निकलकर जंग के मैदान तक जाना पड़ता है।

हज भी ऐसी ही इबादत है जो पूरी ज़िंदगी में एक बार हर उस मुसलमान पर वाजिब है जो हज की शर्तों को पूरा करता हो। यह इबादत भी कठिनाइयों भरी इबादत है।

हज़रत अली[अ०] ख़ान-ए-काबा के बारे में फ़रमाते हैंः

> अल्लाह जिस घर का लोगों से तवाफ़[1] करवाना चाहता था उसे एक ऐसी जगह पर बनवाया है जो इस ज़मीन का बड़ा ऊबड़-खाबड़ टुकड़ा है। अगर अल्लाह चाहता तो ख़ान-ए-काबा को किसी ऐसी जगह पर भी बनवा सकता था जो इस ज़मीन का सब से हरा-भरा और ख़ूबसूरत टुकड़ा होता लेकिन फिर इम्तेहान और कठिनाइयों का मुक़ाबला करना कहाँ होता? लोग हज करने तो जाते लेकिन हज जैसी इबादत से मिलने वाला मक़सद[2] कहाँ पूरा हो पाता?

इमाम अली[अ०] आगे फ़रमाते हैंः

> अल्लाह तरह-तरह की मुसीबतों से अपने बन्दों का इम्तेहान लेता है और उनसे ऐसी इबादत चाहता है जो कठिनाई के साथ पूरी की गई हो। वह तरह-तरह की मुसीबतें देकर अपने बन्दों को जांचता है ताकि उनके दिलों से घमंड व अकड़ को निकाल बाहर करे

---

[1] चक्कर लगवाना

[2] लक्ष्य

> और उनके अंदर नर्मी व हमदर्दी पैदा कर दे। इन इम्तेहानों से वह चाहता है कि बन्दों को अपने करम के खुले दरवाज़ों तक पहुँचा दे और अपनी माफ़ी का रास्ता आसान बना दे।[1]

इस्लाम एक आसान दीन है

आख़िर में इस बात की तरफ़ ध्यान देना भी ज़रूरी है कि कहा तो यह जाता है कि इस्लाम एक आसान दीन है और इसके अंदर कठिनाइयों के लिए कोई जगह नहीं है लेकिन ऊपर जो बातें कही गई हैं उनके हिसाब से तो इस्लाम में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ हैं।

असल में यह दो अलग-अलग बातें हैं। यह बात भी अपनी जगह ठीक है कि ज़िंदगी बिताने के लिए इस्लाम ने जो हुक्म हमें दिए हैं वह कठिन नहीं हैं जैसा कि ख़ुद क़ुरआन ने भी सूरए हज की आयत/78 में कहा हैः

> अल्लाह ने तुम्हारे लिए दीन में कोई कठिनाई नहीं रखी है।

ऐसा नहीं है कि दीन का हुक्म मानने से आदमी के पैरों में बेड़ियाँ पड़ जाएंगी या जीना दूभर हो जाएगा लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि इस्लाम अपने मानने वालों को लाड-प्यार और आराम भरी ज़िंदगी का आदी बनाना चाहता है या उन्हें कमज़ोर देखना चाहता है। ज़रूरत से बढ़कर आराम में न पलने देना या आदमी को कमज़ोर न बनने देना एक अलग चीज़ है और इस्लाम का कठिन दीन न होना एक अलग चीज़ है। इन दोनों बातों को अलग-अलग रखकर समझना चाहिए।

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/190

(7)

इंसाफ़

हज़रत अली[अ0] की नज़र में

बेशक! हम ने अपने रसूलों को खुली निशानियों के साथ भेजा है और उन के साथ किताब व मीज़ान (तराजू) भी भेजी है ताकि लोग अद्ल (इंसाफ़) पर चलें। हम ने लोहा भी भेजा है जो बहुत मज़बूत धातु है और जिसमें लोगों के लिए बहुत सी भलाईयाँ भी हैं। रसूलों को भेजने की एक दूसरी वजह यह भी है कि हम यह देखना चाहते हैं कि कौन है जो बिना देखे उसकी और उसके रसूल की मदद करता है। बेशक! अल्लाह बहुत ताक़त वाला और इज़्ज़त वाला है।[1]

बेशक! अल्लाह इंसाफ़, एहसान और रिश्तेदारों के हक़[2] को पूरा करने का हुक्म देता है और बुरे कामों, बुरी बातों व ज़ुल्म से मना करता है ताकि शायद तुम इसी तरह नसीहत ले लो।[3]

---

[1] सूरए हदीद/25
[2] अधिकार
[3] सूरए नहल/90

पहली आयत में आसमानी मज़्हबों[1] को भेजने की वजह दुनिया में इंसाफ़ को फैलाना बताया गया है और दूसरी आयत में इंसाफ़ को इस्लाम के एक अटूट क़ानून के तौर पर पहचनवाया गया है कि इंसाफ़ इस्लाम की रीढ़ की हड्डी है। अल्लाह इंसाफ़ व एहसान करने का हुक्म देता है और बुराईयों व ज़ुल्म से रोकता है।

इंसाफ़ और एहसान के लिए क़ुरआन ने बार-बार हुक्म दिया है। साथ ही इस्लामी इतिहास की किताबों में और मुसलमानों के बीच इसके ऊपर काफ़ी कुछ कहा और लिखा भी गया है। चूँकि इंसाफ़ इस्लाम की जान है और यह दीन का एक बहुत बड़ा क़ानून है इसलिए इस के बारे में बात करना बहुत ज़रूरी है, ख़ासकर हम शियों को तो इस पर ज़रूर बात करना चाहिए क्योंकि हमारे उसूले दीन में से एक अद्ल (इंसाफ़) भी है।

अद्ल (इंसाफ़) उसूले दीन में से है

उसूले दीन पाँच हैंः तौहीद, अद्ल, नुबुव्वत, इमामत व क़यामत। अद्ल व इमामत को सिर्फ़ शिया ही उसूले दीन में गिनते हैं वरना दूसरे इस्लामी फ़िरक़े इन दोनों को उसूले दीन में नहीं मानते। इस तरह अगर देखा जाए तो अद्ल यानी इंसाफ़ हमारे यहाँ एक बहुत ख़ास क़ानून है। यह अख़लाक़ी बातों (आचार-सदाचार) जैसी कोई हल्की-फुल्की चीज़ नहीं है बल्कि यह इस्लाम की जान है।

[1] धर्म

हज़रत अली[अ०] इंसाफ़ की वजह से शहीद हुए थे

बेशक हज़रत अली[अ०] इंसाफ़, हमदर्दी, मोहब्बत व एहसान के बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँचे हुए थे। अगर हज़रत अली[अ०] इंसाफ़ और दूसरे लोगों के लिए लड़ने के बजाए अपने रास्ते से ज़रा सा भी पीछे हट जाते तो उन्हें कोई शहीद न करता। लेकिन यही वह तलवार थी जिसने इमाम को दुनिया भर के सारे दुखों और मुसीबतों से छुटकारा भी दिला दिया था। इमाम को उस वक़्त शहीद किया गया था जब वह नमाज़ पढ़ रहे थे। यह वही तलवार थी जिसने इमाम को तो हमेशा-हमेशा के लिए सुकून पहुँचा दिया लेकिन इस्लामी दुनिया को क़यामत तक के लिए तड़पा दिया क्योंकि अगर इमाम अली[अ०] की हुकूमत कुछ दिनों और रह जाती तो फिर सारी दुनिया में एक आइडियल सोसाइटी का सब से अच्छा नमूना इस्लामी हुकूमत होती।

इस बात को ख़ुद इमाम अली[अ०] की हदीसों से भी समझा जा सकता है कि ज़हर में बुझी तलवार के उस हमले ने इमाम अली[अ०] को निजी तौर पर आराम व सुकून कैसे दिया था। इस हमले के बाद जब इमाम बिस्तर पर दर्द से तड़प रहे थे तो उसी हालत में फ़रमाया थाः

> मेरी मिसाल उस प्यासे के जैसी है जो अंधेरी रात में किसी मैदान में पानी के लिए तड़प रहा हो और उसे अचानक कहीं से पानी मिल जाए। मैं हमेशा अपने पालने वाले से दुआ माँगा करता था कि ऐ अल्लाह! मुझे जब भी मौत आना हो आ जाए लेकिन मेरी मौत बिस्तर पर न आए। मैं तेरे रास्ते पर मरना चाहता हूँ। आज मेरी दुआ पूरी हो गई है।[1]

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़त/23

कौन से इंसाफ़ ने अली[अ०] को शहीद किया था?

कहा जाता है कि हज़रत अली[अ०] अपने इंसाफ़ की वजह से शहीद हुए लेकिन सवाल यह है कि आख़िर वह कौन सा इंसाफ़ था जिसकी वजह से इमाम को शहीद कर दिया गया था?

क्या यह सिर्फ़ अख़लाक़ी इंसाफ़ (Moral Justice) था जैसे हम कहते हैं कि इमामे जमाअत, क़ाज़ी या तलाक़ के लिए आने वाले गवाह को आदिल होना चाहिए? ऐसी अदालत व इंसाफ़ के लिए तो किसी को नहीं मारा जाता, उलटे इस से तो लोगों के बीच उसकी मोहब्बत और बढ़ जाती है।

इमाम अली[अ०] को इस तरह के इंसाफ़ की वजह से शहीद नहीं किया गया था बल्कि इमाम को इसलिए शहीद किया गया था क्योंकि इमाम दूसरों से बिल्कुल अलग एक इस्लामी सोशल जस्टिस वाली सोच रखते थे और अपनी इस सोच पर बहुत कड़ाई से चलते भी थे। इमाम अली[अ०] हमेशा कहा करते थे कि दीनी हिसाब से इस्लामी समाज को बस इसी तरह की हुकूमत चाहिए।

सिर्फ़ यही नहीं कि हज़रत अली[अ०] आदिल (इंसाफ़ करने वाला) थे बल्कि वह अद्ल को (इंसाफ़) दिल से चाहते भी थे। इन दोनों में फ़र्क़ है। जिस तरह एक आज़ाद आदमी और आज़ादी चाहने वाले आदमी में फ़र्क़ होता है वैसे ही इंसाफ़ करने वाले और इंसाफ़ से मोहब्बत करने वाले में भी फ़र्क़ होता है। एक आदमी आज़ाद है यानी ख़ुद आज़ाद इंसान है लेकिन दूसरा अपने आज़ाद होने के साथ-साथ यह भी चाहता है कि समाज में चारों ओर आज़ादी भी फैली हुई हो यानी समाजी आज़ादी। इल्म भी इसी तरह है कि एक आदमी ख़ुद तो पढ़ा-लिखा है मगर उसे दूसरों से कोई मतलब नहीं है लेकिन एक दूसरा आदमी है जो ख़ुद भी पढ़ा-लिखा है और समाज को भी पढ़ा-लिखा देखना चाहता है। इसी तरह इंसाफ़ भी है कि एक आदमी बस अपनी हद तक इंसाफ़ चाहता है

लेकिन दूसरा आदमी पूरे समाज में इंसाफ़ देखना चाहता है यानी सोशल जस्टिस।

सूरए निसा की आयत/135 में क़ुरआन ने भी इसी बात का हुक्म दिया हैः

> ऐ ईमान वालो! अद्ल व इंसाफ़ के साथ उठ खड़े हो जाओ।

यानी ख़ुद तो इंसाफ़ से काम लो ही, साथ ही सारे समाज में भी इंसाफ़ फैला दो। यह निजी इंसाफ़ से आगे की चीज़ है।

सख़ावत या इंसाफ़? (Generosity or Justice)

किसी ने हज़रत अली[अ०] से पूछा कि सख़ावत अच्छी चीज़ है या अद्ल? इमाम ने कहा कि अद्ल, सख़ावत से अच्छा है क्योंकि अद्ल की वजह से हर चीज़ अपनी जगह पर और हर हक़ अपने हक़दार तक पहुँच जाता है लेकिन सख़ावत (बख़्शिश) चीज़ों को उनकी जगह से हटा देती है।[1]

सख़ावत का मतलब यह है कि आदमी अपने हक़ (अधिकार) को छोड़ दे और वह हक़ अपनी जगह उस आदमी को दे दे जिसका वह हक़ है ही नहीं। इस से यह साबित होता है कि सख़ावत चीज़ों को उनकी जगह से हटा देती है।

दूसरी बात यह है कि अद्ल व इंसाफ़ उस मोटर का नाम है जिस से समाज को चलाया जा सकता है और यही समाज की जान भी है लेकिन सख़ावत को हर जगह और हर हाल में नहीं अपनाया जा सकता। यह तो बस कुछ जगहों पर ही काम में लाई जा सकती है कि किसी ख़ास ज़रूरत की वजह से किसी के साथ सख़ावत व बख़्शिश कर दी जाए।

---

[1] नहजुल बलाग़ा, हिकमत/429

समाजी ज़िंदगी को सख़ावत की बुनियाद पर नहीं चलाया जा सकता और न ही इसको सामने रखकर समाजी क़ानून बनाए जा सकते हैं। अगर सख़ावत, एहसान, बख़्शिश और दान या त्याग की बुनियाद पर समाजी क़ानून बना दिए जाएं और उन क़ानूनों पर चलना ज़रूरी कर दिया जाए तो फिर सख़ावत, एहसान, बख़्शिश और त्याग का नाम ही मिट जाएगा। सख़ावत व एहसान बस उस वक़्त तक सख़ावत व एहसान हैं जब इन के नाम पर ऐसा कोई क़ानून न हो जिस पर चलना ज़रूरी हो यानी क़ानून की वजह से नहीं बल्कि आदमी अपनी मर्ज़ी से किसी के साथ सख़ावत व एहसान करे। इस से यह पता चलता है कि इंसाफ़, सख़ावत से अच्छी चीज़ है।

सख़ावत, इंसाफ़ से बेहतर है, इस बारे में यह था हज़रत अली[अ०] का जवाब।

अगर कोई आदमी समाज को सामने रखकर न सोचता हो और वह हर चीज़ को बस निजी तौर पर देखता हो तो वह कभी कह ही नहीं सकता कि इंसाफ़, सख़ावत से अच्छा है लेकिन हज़रत अली[अ०] ने अपनी इस अनमोल बात में इंसाफ़ को समाजी हिसाब से देखा है और इंसाफ़ को समाजी तराज़ू पर तौलते हुए ही कहा है कि इंसाफ़ सख़ावत से अच्छा है। यह बात बस वही कह सकता है जो हर चीज़ को समाजी हिसाब से देखता हो।

अख़लाक़ के हिसाब से सख़ावत व इंसाफ़

इसके उलट अख़लाक़ वालों ने सख़ावत को इंसाफ़ से अच्छा माना है जबकि हज़रत अली[अ०] ने साफ़-साफ़ कहा है कि इंसाफ़, सख़ावत से अच्छा है और इस बात को साबित भी किया है।

यह दोनों बातें दो अलग-अलग हिसाब से कही गई हैं। अगर बस निजी ज़िंदगी और अख़लाक़ को सामने रखकर देखा जाए तो सख़ावत, इंसाफ़ से अच्छी चीज़ है। अख़लाक़ के हिसाब से सख़ावत, इंसाफ़ से बहुत ऊँची क्वालिटी है क्योंकि अगर निजी ज़िंदगी में देखा जाए तो इंसाफ़ पर चलने वाला बस इतना ही अपने कमाल पर पहुँचा हुआ होता है कि वह किसी दूसरे का कोई हक़ नहीं छीनता और किसी का माल हड़प नहीं करता लेकिन वह आदमी जो सख़ावत से काम लेता है वह न सिर्फ़ यह कि दूसरों का हक़ नहीं छीनता बल्कि अपने हक़ में से भी दूसरों को दे देता है, न सिर्फ़ यह कि किसी पर हमला नहीं करता बल्कि दूसरों को भी हमलों से बचा लेता है, न सिर्फ़ यह कि किसी को चोट नहीं पहुँचाता बल्कि अस्पतालों या जंग के मैदान में या किसी भी तरह ज़ख़्मी हो जाने वालों की देखभाल भी करता है, उन्हें दवाई खिलाता है, उनका इलाज कराता है, उनकी मरहम-पट्टी कराता है, न सिर्फ़ यह कि किसी का ख़ून नहीं बहाता बल्कि अपना ख़ून भी दूसरों को दे देता है।

अगर निजी ज़िंदगी और आचार-सदाचार के हिसाब से देखा जाए तो सख़ावत, इंसाफ़ से अच्छी चीज़ है बल्कि इन दोनों में कोई मुक़ाबला ही नहीं है।

समाजी हिसाब से इंसाफ़ व सख़ावत

समाजी हिसाब से इंसाफ़ व सख़ावत में कौन सी चीज़ अच्छी है? अगर समाजी ज़िंदगी को सामने रखकर देखा जाए तो इंसाफ़, सख़ावत से कहीं अच्छी चीज़ है।

समाजी ज़िंदगी में इंसाफ़ की वही जगह है जो किसी बिल्डिंग में उसकी बुनियाद की होती है। इसी तरह समाजी ज़िंदगी में सख़ावत की वह जगह है जो किसी बिल्डिंग में रंग-रौग़न, पेन्टिंग व फ़िनिशिंग की होती है। पहले बिल्डिंग की

बुनियाद मज़बूत होना चाहिए तब जाकर फ़िनिशिंग का नम्बर आता है। अगर किसी बिल्डिंग की बुनियाद ही कमज़ोर हो तो अगर उस पर रंग कर भी दिया जाए तो क्या फ़ाएदा होगा? लेकिन अगर किसी बिल्डिंग की बुनियाद मज़बूत हो तो उसकी फ़िनिशिंग के बिना भी उस में रहा जा सकता है। हो सकता है कि कोई बिल्डिंग दिखने में तो बहुत अच्छी हो लेकिन अगर उसकी बुनियाद कमज़ोर हुई तो एक ही बारिश में वह ढह जाएगी।

सख़ावत कुछ जगहों पर बहुत अच्छी चीज़ है और देने वाले के हिसाब से भी बहुत बड़ी क्वालिटी है मगर लेने वाले के हिसाब से यह कहीं से कहीं तक कोई अच्छी चीज़ नहीं है क्योंकि यह वह काम है जिसमें लेने वाला दूसरे के समाने अपना हाथ फैला रहा होता है। इस चीज़ को भी ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी है। अगर समाजी ज़रूरतों को सामने न रखा जाए तो यही अच्छाई बुराई भी बन जाती है जो पूरे समाज में फैल जाती है। हालात को देखे बिना किसी को ज़्यादा दे देना, असलियत को देखे बिना ज़्यादा सदक़ा निकाल कर दे देना ... यह तरीक़ा अगर पूरे समाज में फैल जाए तो फिर यह पूरे समाज की चूलें हिला देगा। अगर लोगों को मुफ़्त में उनकी ज़रूरत से ज़्यादा मिलना शुरू हो जाएगा तो वह काम करना और कोशिश करना बंद कर देंगे। काहिल हो जाएंगे। समाज में तरह-तरह की बुराईयाँ फैल जाएंगी और फिर पूरे समाज को वह नुक़सान पहुँचेगा कि उतना नुक़सान शायद किसी बहुत बड़े फ़ौजी हमले से भी न पहुँचता।

इस बारे में क़ुरआन को देखिएः

> यह लोग इस दुनिया में जो कुछ ख़र्च करते हैं जिसको सदक़ा व बख़्शिश का नाम देते हैं, उसकी मिसाल उस हवा की सी है जिसमें बहुत पाला हो और वह उन लोगों के खेतों पर गिर पड़े जिन्होंने अपने ऊपर ज़ुल्म किया है और सारी खेती को

> बर्बाद कर दे और उन पर यह ज़ुल्म अल्लाह ने नहीं किया है बल्कि वह ख़ुद अपने ऊपर ज़ुल्म करते हैं।[1]

समाज को किसी भी तरह सख़ावत पर नहीं चलाया जा सकता। समाजी ज़िंदगी इंसाफ़ पर चलती है। बेहिसाब सदक़ा, बेहिसाब बख़्शिश, बेहिसाब दान और बेहिसाब सख़ावत से समाज अपनी डगर से हट जाता है।

इमाम सज्जाद[अ०] फ़रमाते हैंः

> न जाने कितने लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपने बारे में इतनी अच्छाईयाँ बताईं कि ख़ुद ही ख़राब हो गए। न जाने कितने लोग ऐसे हैं जिनकी बुराईयों को अंदेखा किया गया तो वह घमंडी हो गए। न जाने कितने लोग ऐसे हैं जिन के साथ ज़रूरत से बढ़कर सख़ावत व एहसान किया गया तो वह निकम्मे व बेकार हो गए।[2]

यह है हज़रत अली[अ०] की इस बात का मतलब जिसमें आपने फ़रमाया है कि ‘‘इंसाफ़ की वजह से हर चीज़ अपनी जगह पर और हर हक़ अपने हक़दार तक पहुँच जाता है लेकिन सख़ावत व बख़्शिश चीज़ों को उनकी जगह से हटा देती है।’’

हज़रत अली[अ०] सख़ावत और एहसान करने वालों में सब से ऊपर हैं। बहुत से लोग जब सुनते हैं कि अली[अ०] जैसे इंसान ने इंसाफ़ को सख़ावत से ऊपर रखा है तो उनको बड़ा ताज्जुब होता है कि यह कैसे हो सकता है कि जो आदमी ख़ुद इतना एहसान करने वाला हो वह भला इंसाफ़ को सख़ावत से बड़ा कैसे मान सकता है? लेकिन अभी ऊपर जो बातें हुई हैं उनको सामने रखकर कहा जा सकता है कि हम ने अभी तक इंसाफ़ को बस एक ही हिसाब से देखा है और वह उसका निजी व अख़लाक़ी पहलू (Individual & Moral Aspect) है। अगर इस

---

[1] सूरए आले इमरान/117

[2] तोहफ़ुल उक़ूल/281

हिसाब से देखा जाए तो फिर सख़ावत ही इंसाफ़ से बड़ी चीज़ दिखाई पड़ेगी लेकिन समाजी पहलू (Social Aspect) निजी व अख़लाक़ी पहलू से बढ़कर होता है। इस सच्चाई पर हम ने बहुत कम ध्यान दिया है और ऐसा इसलिए है क्योंकि समाजी ज़िंदगी और समाजी क़ानूनों की स्टडी करते हुए अभी आदमी को कोई बहुत ज़्यादा लम्बा वक़्त नहीं बीता है। हमारे पिछले उलमा ने थोड़ा-बहुत इस पर ध्यान दिया है लेकिन एक सब्जेक्ट की तरह अभी तक इस पर भरपूर काम नहीं हुआ था जो बहरहाल अब हो रहा है। इसलिए इस बारे में बस अख़लाक़ी व निजी पहलू पर ही ध्यान दिया जाता रहा है।

अभी तक ऐसी कोई किताब नहीं दिखी है जिस में इमाम अली[अ०] की इस हदीस के बारे में इस नज़रिए को सामने रखकर बात की गई हो जबकि इमाम अली[अ०] की यह हदीस नहजुल बलाग़ा में सैंकड़ों साल से लिखी हुई है और सभी ने इसे पढ़ा भी होगा। ऐसा शायद इसलिह हुआ होगा क्योंकि पिछले लोगों को यह बात अख़लाक़ी उसूलों (Moral Grounds) पर सही बैठती दिखाई पड़ती होगी लेकिन आज साइंस के तरक़्क़ी कर जाने की वजह से आचार-सदाचार से आगे बढ़कर भी बात हो रही है जिसकी वजह से आज हम यह आसानी से समझ जाते हैं कि कौन सी बात कितनी गहरी या कितनी हल्की है। आज हमारी समझ में यह बात बड़ी आसानी से आ जाती है। आज इमाम अली[अ०] की यह बात ख़ुद उनके दौर बल्कि नहजुल बलाग़ा को इकट्ठा करने वाले सैय्यद रज़ी के दौर से भी ज़्यादा चमक पैदा कर रही है। आज जाकर समझ में आ पाया है कि यह बात कितनी गहरी और कितनी अनमोल है। ख़ुद सैय्यद रज़ी जिन्होनें इमाम अली[अ०] की हदीसों को नहजुल बलाग़ा के नाम से इकट्ठा किया था, या उस वक़्त के सब से बड़े फ़िलास्फ़र बू अली सीना (Avicena) भी इस समाजी सच्चाई को नहीं बता सकते थे क्योंकि इल्म इतना आगे बढ़ ही नहीं पाया था।

सख़ावत और एहसान में फ़र्क़

मतलब के हिसाब से सख़ावत और एहसान एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं। क़ुरआन ने भी इंसाफ़ को एहसान के साथ रखा हैः

> बेशक! अल्लाह इंसाफ़ और एहसान करने का हुक्म देता है।

जिस आदमी ने इमाम अली[अ०] से इंसाफ़ और सख़ावत के बारे में सवाल किया था, ऐसा लगता है कि उसने क़ुरआन की इसी आयत के बारे में सवाल किया था कि इंसाफ़ अच्छा है या एहसान ?

वैसे मतलब के हिसाब से सख़ावत और एहसान एक-दूसरे से मिलते-जुलते ज़रूर हैं लेकिन इन दोनों के मायनी एक बिल्कुल नहीं हैं क्योंकि एहसान, सख़ावत से ज़्यादा बड़ी चीज़ है। एहसान में हर तरह की सख़ावत आती है जैसे पैसे से सख़ावत या दूसरी किसी भी तरह की कोई अच्छाई। जैसे अगर कोई किसी अंधे का हाथ पकड़कर सड़क पार करा दे तो यह सख़ावत नहीं है बल्कि यह एहसान है। इसी तरह अगर किसी अनपढ़ को पढ़ा दिया जाए तो यह भी एहसान होगा, न कि सख़ावत। इसलिए सख़ावत छोटी चीज़ है और एहसान उस से कहीं बड़ी चीज़ है।

इंसाफ़ ही समाज की जान है

इस सवाल-जवाब के बारे में हम ने इसलिए बात की है ताकि हम इस चीज़ पर ध्यान दे सकें कि हज़रत अली[अ०] ने इंसाफ़ को किस हिसाब से देखा है। क्या इमाम अली[अ०] इंसाफ़ को निजी तौर पर देखते थे या समाजी हिसाब से? इस सवाल-जवाब और फिर इस पर ऊपर जो बात हुई है उस से

यह साबित हो जाता है कि इस सवाल का जवाब देते हुए इमाम अली[अ०] इंसाफ़ के समाजी पहलू पर ध्यान दे रहे थे। इमाम अली[अ०] की इस हदीस और फिर उनकी अपनी ज़िंदगी ख़ासकर हुकूमत वाली ज़िंदगी को सामने रखकर आसानी से कहा जा सकता है कि इमाम पूरे इस्लामी समाज में समाजी इंसाफ़ देखना चाहते थे और इंसाफ़ को इस्लाम का एक अटल क़ानून मानते हुए इसे सब से ऊपर रखते थे। इमाम अली[अ०] की हुकूमत की जड़ें इसी इस्लामी क़ानून से लिपटी हुई थीं। इसीलिए, चाहे कोई भी वजह हो, इमाम अली[अ०] किसी भी हाल में इस क़ानून से ज़रा सा भी पीछे नहीं हटते थे।

बस यही वह सब से बड़ी, जी हाँ! सब से बड़ी वजह थी जिसने इमाम अली[अ०] के लिए बहुत सारी मुसीबतें खड़ी कर दी थीं। मगर यही वह शानदार सच्चाई भी है कि जब इतिहास लिखने वाला कोई आदमी इमाम अली[अ०] की ज़िंदगी और उनकी हुकूमत के बारे लिखना चाहता है तो इसी चाबी से हर ताले को खोलता है। जहाँ इंसाफ़ की बात आती थी तो इमाम अली[अ०] ज़रा सा भी नहीं झुकते थे। इस मामले में इमाम अली बहुत कड़े थे।

तीसरे ख़लीफ़ा की हुकूमत में पूरा इस्लामी समाज दो हिस्सों में बंट गया था और इन दोनों हिस्सों में बहुत गहरी खाई पैदा हो गई थी। एक हिस्सा पैसे वालों का था जो पैसे के नशे में चूर था और दूसरा हिस्सा उन लोगों का था जिनके पास खाने के लिए दो वक़्त की रोटी भी नहीं होती थी।

इमाम अली[अ०] इस बारे में फ़रमाते हैंः

> ... अगर वह वादा न होता जो अल्लाह ने उलमा से ले रखा है कि अल्लाह की सारी नेमतों को यह ज़ालिम अपने पास बटोरे जाएं और इतना खाएं कि खा-खाकर बीमार हो जाएं और मज़लूमों की हालत यह हो कि उनके पास अपना पेट भरने के लिए

> रोटी भी न हो तो मैं हुकूमत की बागडोर उसी के कंधों पर डाल देता।[1]

मतलब यह है कि जब ऐसे हालात बन जाएं तो पढ़े-लिखे लोग चुप होकर एक तरफ़ बैठे तमाशा नहीं देख सकते कि जो हो रहा है होने दो, हम से क्या मतलब। इमाम अली[अ०] कह रहे हैं कि अगर इन हालात में मुझे अपनी ज़िम्मेदारी नज़र न आती तो मैं अपनी जगह से बिल्कुल भी न उठता, हुकूमत को हाथ भी न लगाता और पहले दिन की तरह किनारे हो जाता।

हज़रत अली[अ०] की हुकूमत की पॉलीसी

हज़रत अली[अ०] ने अपनी हुकूमत में इसी तरह की पॉलीसी अपनाई थी और ऐसा नहीं था कि इमाम अली[अ०] बस अपनी हुकूमत में रहने वालों को ही उनका हक़ दिलाना चाहते हों बल्कि इमाम अली[अ०] तो चाहते थे कि पिछली हुकूमतों में जो भी लूट-खसूट हुई है और जिस किसी को भी उसका हक़ नहीं मिला है वह भी दिला दिया जाए। इमाम अली[अ०] ख़ुद भी जानते थे कि इस पॉलिसी पर चलने की वजह से बहुत सी मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी इसीलिए इमाम अली[अ०] ने आने वाले लोगों से साफ़-साफ़ कह दिया थाः

> मुझे छोड़ दो और (इस हुकूमत के लिए) किसी और को ढूंढ लो। हमारे सामने एक ऐसा मामला है जिसके कई कई रंग हैं जिसे न दिल झेल पाएंगे और न अक़्लें मान सकेंगी।

यानी यह जो आज तुम लोग मेरे पास आए हो जब देखोगे कि यह रास्ता बहुत कठिन है तो हो सकता है कि बीच रास्ते से ही वापस पलट जाओ।

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/3

इसके बाद इमाम फ़रमाते हैंः

> देखो! आसमान पर घटाएं छाई हुई हैं और रास्ता पहचानने में नहीं आता।

यानी पिछले कुछ सालों में कुछ लोगों को बुत बना दिया गया था और उनकी पूजा की जा रही थी। अब इस तरीक़े को बदलना होगा और यह तो तय है कि एक नए रास्ते पर चलना बहुत कठिन काम होता है।

इसके बाद आने वाले लोगों से इमाम अली[अ०] ने बहुत साफ़-साफ़ कह दिया था कि मेरी बात मान लो और अभी से वापस चले जाओ, नही ंतो जिस रास्ते पर मैं चलने वाला हूँ वह इतना आसान नहीं है जितना तुम समझ रहे होः

> तुम्हें पता होना चाहिए कि अगर मैं तुम्हारी इस बात को मान लूँ तो तुम्हें उस रास्ते पर ले चलूँगा जिस पर मैं चलना चाहता हूँ। फिर मैं किसी की कोई बात नहीं मानूँगा।[1]

इस्लामी ज़मीनों के बारे में कड़ा फ़ैसला

तीसरे ख़लीफ़ा की हुकूमत में जो ज़मीनें इस्लामी हुकूमत की प्रापर्टी थीं वह ख़लीफ़ा ने अपने ख़ास-ख़ास लोगों को दे दी थीं। इस बारे में इमाम अली[अ०] ने बहुत साफ़-साफ़ एलान कर दिया थाः

> अल्लाह की क़सम! जो ज़मीनें इस्लामी हुकूमत की प्रापर्टी थीं मैं उन सारी ज़मीनों को वापस ले लूँगा, चाहे उन ज़मीनों को अपनी औरतों के महेर में दे दिया गया हो या उन से कनीज़ें[2] ख़रीद ली गई हों।[3]

---

[1] सूरए अहक़ाफ़/15
[2] नौकरानियाँ
[3] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/15

पिछली सारी फ़ाइलें खोल दीं

हज़रत अली[अ०] को अपनी हुकूमत में बहुत सारी मुसीबतों और जंजालों का सामना करना पड़ा था। इसकी एक वजह यह थी कि इमाम अली[अ०] ने यह नहीं कहा कि चलो! कोई बात नहीं, पिछली हुकूमतों में जो कुछ हुआ उसे छोड़ो, अब नए सिरे से हूकूमत चलाते हैं और हालात को ठीक करते हैं बल्कि इमाम अली[अ०] ने कहा कि अब तक जो भी गड़बड़ियाँ हुई हैं उन सब को दूर करना है। इसलिए पिछली सारी फ़ाइलें खोल दो क्योंकि जब तक पिछली गड़बड़ियों को ठीक नहीं किया जाएगा तब तक आज के हालात भी ठीक नहीं हो सकते। फ़ार्मूला भी यही है कि अगर अपने आज को ठीक करना है तो बीते हुए कल को भी ठीक करना होगा क्योंकि किसी टेढ़ी और कमज़ोर बुनियाद पर कोई मज़बूत बिल्डिंग खड़ी ही नहीं की जा सकती।

इंसाफ़ में बहुत लचक होती है

इसके बाद हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> इंसाफ़ में दूसरी हर चीज़ से ज़्यादा लचक होती है जिसकी वजह से हर आदमी राज़ी हो सकता है। अगर कोई इंसाफ़ की वजह से मिलने वाले अपने हक़ पर राज़ी न हो पाए तो ऐसा आदमी ज़ुल्म भरे हालात में तो और भी घुटन का एहसास करेगा।

आदमी की रूह[1] पर दो तरह के प्रेशर पड़ते हैंः एक समाजी प्रेशर जो दूसरे लोग उस पर डालते हैं और जो दूसरों की वजह से जन्म लेता है।

---

[1] आत्मा

दूसरा प्रेशर वह है जो ख़ुद आदमी अपने ऊपर लाद लेता है। जो ख़ुद आदमी के अंदर से फूटता है जैसे जलन, दुश्मनी, बदला लेने का प्रेशर या लालच का प्रेशर और ऐसे दूसरे बहुत सारे प्रेशर।

अब अगर समाजी इंसाफ़ फैल जाए तो समाजी प्रेशर अपने आप ख़त्म हो जाता है क्योंकि समाजी इंसाफ़ फैलाने वाली हुकूमत में कोई किसी का हक़ छीन ही नहीं सकता। इस हिसाब से उसके ऊपर किसी भी तरह का प्रेशर नहीं डाला जा सकता लेकिन अगर समाजी इंसाफ़ न हो और चारों ओर ज़ुल्म, छीना-झपटी और मारामारी हो तो जिनको लालच की बीमारी लगी हुई होगी उनकी लालच और बढ़ जाएगी जिससे उनका यह अंदर वाला प्रेशर एकदम से बढ़ जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि अगर किसी पर समाजी इंसाफ़ की वजह से प्रेशर पड़ता है या उसे दिक़्क़त होती है तो उसे ज़ुल्म व मारामारी की हालत में और ज़्यादा दिक़्क़त होगी।

मशहूर मुसलमान स्कॉलर इब्ने अबिल हदीद ने लिखा है कि तीसरे ख़लीफ़ा के क़त्ल के बाद लोग मस्जिद में इकट्ठा हो गए थे कि देखिए! अब हुकूमत किसको मिलती है। यह बात सभी जानते थे कि इमाम अली[अ०] से हटकर हुकूमत करने के लिए अब दूसरा कोई नहीं है। लोग आ रहे थे, भीड़ बढ़ती जा रही थी और एक के बाद एक बड़े-बड़े सहाबी हज़रत अली[अ०] के अब तक के कारनामे गिना रहे थे और उनकी तारीफ़ों के पुल बांध रहे थे। बहरहाल भीड़ ने हज़रत अली[अ०] को अपना ख़लीफ़ा मान लिया। यह वही वक़्त था जब इमाम अली[अ०] ने फ़रमाया थाः

> मुझे छोड़ दो और (इस हुकूमत के लिए) किसी और को ढूंढ लो। हमारे सामने एक ऐसा मामला है जिसके कई रंग हैं जिन्हें न दिल झेल पाएंगे और न अक़्लें मान सकेंगी।
>
> यही जो आज तुम लोग मेरे पास आए हो जब देखोगे कि मेरे रास्ते पर चलना बड़ा कठिन है तो हो

> सकता है कि बीच रास्ते से ही वापस पलट जाओ क्योंकि मैं तुम्हारी छोटी सी ग़लती को भी नहीं छोड़ूँगा।

इमाम अली[अ०] ने सब के सामने साफ़-साफ़ अपनी बात रखकर अपना काम पूरा कर दिया था कि अब जो भी होगा तुम ख़ुद ही उसके ज़िम्मेदार होगे। इसलिए चाहो तो अभी से वापस पलट जाओ लेकिन लोग नहीं माने और इमाम अली[अ०] को हुकूमत की बागडोर दे ही दी।

एक ख़तरनाक वार्निंग

इब्ने अबिल हदीद लिखते हैं कि हुकूमत मिलते ही अगले दिन इमाम अली[अ०] मस्जिद में मिम्बर पर गए और जो कुछ पिछले दिन कहा था उसे और खुल कर इस तरह फिर से कहाः

> अल्लाह ख़ूब जानता है कि मुझे हुकूमत और ताक़त का कोई शौक़ नहीं है। मैंने अल्लाह के रसूल[स०] से सुना है कि मेरे बाद जो भी हुकूमत करेगा क़यामत में उसे पुले सिरात पर रोक दिया जाएगा और अल्लाह के फ़रिश्ते उसके नाम-ए-आमाल को खोल देंगे। अगर उसने इंसाफ़ से काम लिया होगा तो अल्लाह उसे उसके इंसाफ़ की वजह से छोड़ देगा, नहीं तो पुले सिरात हिलेगा और वह वहीं नीचे गिर जाएगा।
>
> उसके बाद इमाम ने इधर-उधर देखा और अपने आसपास बैठे हुए लोगों पर एक नज़र डालते हुए कहा कि बहुत से लोगों को दुनिया ने जकड़ लिया है जिनके पास पैसे की रेल-पेल, नहरें, शानदार घोड़े और ख़ूबसूरत कनीज़ें हैं। कल मैं उन से यह सब

> चीज़े वापस लेकर सरकारी ख़ज़ाने में डाल दूँगा और उन्हें बस उतना ही दूँगा जितना उनके पास होना चाहिए। उस वक़्त उन में से कोई मेरे पास न आए और यह न कहे कि अली ने मेरे साथ यह क्या कर दिया? हुकूमत मिलने से पहले तो ऐसा कहा था और हुकूमत मिल गई तो अली बदल गए। अली ने तो हम से सब कुछ छीन लिया। इसलिए ख़बरदार! अभी से देख लो और समझ लो। मेरी पॉलीसी बिल्कुल साफ़ है। मैं पहले से ही बताए देता हूँ कि मैं ऐसा करने वाला हूँ।

इसके बाद इमाम अली[अ०] ने और भी बहुत सारी बातें कहीं। जो लोग अपने आप को दूसरों से बड़ा समझते थे और जिन पर गड़बड़ियों का इल्ज़ाम (आरोप) भी लगा हुआ था उनका कहना था कि हम ने रसूले इस्लाम[स०] का पीरियड भी देखा है और हर जगह उन के साथ रहे हैं। हम ने इस्लाम के लिए तरह-तरह की मुसीबतें भी उठाई हैं।

इमाम अली[अ०] ने उन से कहाः

> मैं तुम्हारी इस बात को नहीं ठुकरा रहा हूँ कि बहुत से लोगों ने रसूले इस्लाम[स०] का पीरियड देखा है और मुसीबतों में उनका साथ भी दिया है लेकिन यह सब वह चीज़ें हैं जिनका बदला ख़ुद अल्लाह अपने हाथों से देगा। यह चीज़ें ऐसी नहीं हैं कि इनकी वजह से कुछ लोगाों को दूसरे कुछ लोगों से अलग समझ लिया जाए और समाज में दो हिस्से (वर्ग) बना दिए जाएं। नहीं! यह नहीं हो सकता और इस वजह से किसी को भी किसी से बड़ा नहीं समझा जा सकता।

इसके बाद लोग दूर होने लगे

अगले दिन जिन लोगों को पता था कि अब वह हज़रत अली[अ०] की इस पॉलीसी की वजह से घाटा उठाने वाले हैं वह एक जगह इकट्ठा हुए और बैठकर आपस में राय-मश्वरा करने लगे कि अब क्या किया जाए? आपस में बात करके उन्होंने वलीद बिन अक़्बा बिन अबी मुईत नाम के अपने एक साथी को इमाम अली[अ०] के पास भेज दिया। उसने इमाम अली[अ०] के पास जाकर कहा कि यह तो आप जानते ही हैं कि पिछली जंगों में जो कुछ हुआ है उसकी वजह से हम सब आप से ख़ुश नहीं हैं और शायद हम में हर एक का कोई न कोई रिश्तेदार ऐसा ज़रूर होगा जो आपके हाथों मारा जा चुका है लेकिन फिर भी हम ने इस बात को भुला दिया है। अब हम दो शर्तों के साथ आपकी हुकूमत में रहने के लिए तैयार हैंः

पहली शर्त यह है कि जैसे हम ने पिछली सारी बातों को भुला दिया है उसी तरह आप भी पिछली बातों को भुला दीजिए और जो कुछ हुआ है उसको भूल जाइए। पिछली बातों को भुलाकर नए सिरे से आपको जो कुछ भी करना है कीजिए, हमें उससे कोई दिक़्क़त नहीं होगी।

दूसरी शर्त यह है कि तीसरे ख़लीफ़ा को जान से मारने वाले खुले आम घूम रहे हैं। उन्हें पकड़कर हमें दे दीजिए ताकि हम ख़लीफ़ा के क़त्ल का बदला ले लें।

अगर आप इन शर्तों में से किसी एक शर्त को भी नहीं मान सकते तो फिर हम सीरिया में वहाँ की शामी हुकूमत और अमीरे शाम के साथ जाने पर मजबूर हो जाएंगे।

हज़रत अली[अ०] ने फ़रमाया कि जहाँ तक पिछली जंगों में बहे ख़ून की बात है तो वह ख़ून किसी निजी दुश्मनी की वजह से तो बहाया नहीं गया था। वह तो इस्लाम के नाम पर बहाया गया था। हम इस्लाम के लिए लड़ रहे थे और तुम ग़लत रास्ते के लिए, जिसमें इस्लाम जीत गया और तुम हार गए। अगर तुम्हें कोई शिकायत है तो जाओ, जो कुछ भी कहना है वह

इस्लाम से ले लो और उसी से कहो कि उसने तुम्हें क्यों हराया और क्यों बर्बाद कर दिया?

तुम्हारी दूसरी बात यह है कि मैं पिछली गड़बड़ियों और जो कुछ पिछली हुकूमतों में हुआ है उसे भूल जाऊँ, तो जान लो कि ऐसा करना मेरे हाथ में है ही नहीं। यह तो वह काम है जो ख़ुद अल्लाह ने मुझे दिया है।

जहाँ तक तीसरे ख़लीफ़ा को मारने वालों को पकड़ने और उन्हें सज़ा देने की बात है तो यह भी समझ लो कि अगर मुझे लगता कि उन्हें सज़ा दी जाना चाहिए तो मैं कल ही उन्हें सज़ा दे देता।

वलीद सारी बातें सुनकर वापस चला गया। जो कुछ हज़रत अली[अ०] ने कहा था वह उसने वापस जाकर अपने साथियों को सुना दिया। सुनते ही सब ने एकदम फ़ैसला कर लिया कि अब अली[अ०] की हुकूमत का साथ नहीं देना है। बस फिर क्या था, वह सब हज़रत अली[अ०] के साथ खुली दुश्मनी पर उतर आए और चारों ओर से हमले शुरू कर दिए।

हज़रत अली[अ०] के साथियों की सोच

इब्ने अबिल हदीद इस के बाद लिखते हैं कि जैसे ही हज़रत अली[अ०] के साथियों को पता चला कि कुछ लोग एक साथ मिल गए हैं और मेरे और उनकी हुकूमत के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए हैं तो वह सब फ़ौरन हज़रत अली[अ०] के पास आए। आकर कहने लगे कि इन लोगों की दुश्मनी की सब से बड़ी वजह आपका इंसाफ़ है। यहाँ तक कि तीसरे ख़लीफ़ा को मारने वालों को सज़ा देने की बात भी बस एक बहाना है। इस काम से वह बस लोगों को भड़काकर अपने साथ लाना चाहते हैं।

हज़रत अली[अ०] के साथी चाहते थे कि इमाम अपनी पॉलिसी पर थोड़ा सा एक बार और सोच लें। अगर हो सके तो उस में कुछ बदलाव ले आएं।

हज़रत अली[अ०] समझ गए कि अब यही सोच दूसरे लोगों के दिमाग़ में भी जनम ले लेगी कि जब ऐसे हालात बन गए हैं तो फिर इंसाफ़ से इतना चिपके रहने की ज़रूरत ही क्या है। इसलिए इमाम अली[अ०] फ़ौरन उठे और मस्जिद की तरफ़ चल दिए। मिम्बर पर पहुँचे और ख़ुतबा देना शुरू कर दियाः

> शुक्र है उस अल्लाह का जो हमारा पालने वाला है जिसकी हम इबादत करते हैं। उसने हमे अनगिनत नेमतें दी हैं। उसने जितनी भी नेमतें हमें दी हैं वह हमारे ऊपर उसका एहसान है जबकि हम कुछ भी नहीं थे।

उसके बाद फ़रमायाः

> अल्लाह का सब से अच्छा बन्दा वह है जो दूसरों से कहीं बढ़कर उसका हुक्म मानता हो, अल्लाह के रसूल[स०] के बताए रास्ते पर दूसरों से अच्छे ढंग से चलता हो और अल्लाह की किताब यानी क़ुरआन को अच्छी तरह से ज़िंदा रखे। हम अगर किसी भी आदमी को किसी दूसरे आदमी से बड़ा समझते हैं तो बस उसके तक़्वा और अल्लाह के बताए रास्ते पर चलने की वजह से ही उसे बड़ा समझते हैं। क़ुरआन हमारे सामने है और यह भी हम सब जानते हैं कि अल्लाह के रसूल[अ०] इंसाफ़ के क़ानून पर ही इस्लामी समाज को अपने साथ लेकर चल रहे थे। यह बातें किसी से भी ढकी-छुपी नहीं हैं। इन बातों को सब जानते हैं और अगर कोई कहता है कि मुझे नहीं पता तो ऐसा वह बस अपने किसी निजी फ़ाएदे या फिर किसी दुश्मनी की वजह से ही कह रहा है।

इसके बाद इमाम अली[अ०] ने सूरए हुजुरात की आयत/13 पढ़ीः

> ऐ लोगो! हम ने तुम को एक मर्द और एक औरत से बनाया है। फिर तुम में शाख़ें व ख़ानदान बना

> दिए हैं ताकि आपस में एक-दूसरे को पहचान सको। बेशक! तुम में अल्लाह के यहाँ ज़्यादा इज़्ज़त वाला वही है जो ज़्यादा तक़्वा वाला है। अल्लाह हर चीज़ का जानने वाला और हर बात का जानकार है।

यह आयत इमाम ने इसलिए पढ़ी ताकि यह साबित कर सकें कि मैं इस आयत की वजह से ही एक-दूसरे पर तुम्हारी बड़ाई को ख़त्म कर रहा हूँ।

ज़मीनों की वापसी

इमाम अली[अ०] ने पहले ही कह दिया था कि मैं सारी ज़मीनें उनके असली मालिकों तक पहुँचा दूँगा, चाहे उन ज़मीनों को औरतों के महेर में दे दिया गया हो या उन से कनीज़ें ख़रीद ली गई हों।

इस बारे में इब्ने अबिल हदीद कहते हैं कि जैसा इमाम अली[अ०] ने कहा था वैसा कर भी दिखाया यानी ज़मीनें वापस ले लीं। बस वही ज़मीनें रह गई थीं जिनके मालिक कहीं दूसरी जगह भाग गए थे और इमाम अली[अ०] के हाथ नहीं लग पा रहे थे।

अमीरे शाम के नाम अम्रे आस का ख़त

इस बीच अम्रे आस ने अमीरे शाम के नाम एक ख़त भेजा जिसमें लिखा थाः

> जो कुछ तुम से हो सकता हो, कर डालो क्योंकि बहुत जल्दी अबू तालिब का बेटा तुम से तुम्हारी सारी पूँजी और हर उस चीज़ को छीन लेगा जो तुम

ने अभी तक इकट्ठा की है बिल्कुल उसी तरह जिस तरह छड़ी से उसकी छाल को अलग किया जाता है।[1]

हज़रत अली[अ०] इंसाफ़ की वजह से ही शहीद हुए थे

लिखने वालों ने लिखा हैः ''इंसाफ़ को पूरी तरह से लागू करने की वजह से ही इमाम अली[अ०] को शहीद किया गया था''।

इस बात का मतलब वही है जो अभी ऊपर बताया गया है। लगता यही है कि दूसरे सारे मामले जैसे तीसरे ख़लीफ़ा के क़ातिलों से बदला लेने वाली बात या पिछली जंगों में आगे-आगे रहने और अपने रिश्तेदारों के क़त्ल हो जाने वाली बात को भुला देना बस एक बहाना था वरना उन लोगों का असली मुद्दा हज़रत अली[अ०] का यही इंसाफ़ और सोशल जस्टिस था। ख़ासकर उन हालात में कि जब हज़रत अली[अ०] इस बात पर बिल्कुल तैयार नहीं थे कि पिछली गड़बड़ियों को छोड़ दिया जाए और नए सिरे से आने वाले कल को शुरू किया जाए।

हुकूमत से फ़ाएदा उठाना

यहाँ तक आने के बाद अब आइए! एक नज़र इस पर भी डाल लेते हैं कि अपनी इस सोच की वजह से ख़ुद हज़रत अली[अ०] को अपने निजी कामों और निजी ज़िंदगी में कितनी ज़्यादा दिक़्क़तें उठाना पड़ी थीं। हज़रत अली[अ०] किसी भी तरह इस बात पर तैयार नहीं थे कि वह ख़ुद या उनके रिश्तेदारों या साथियों में से कोई दूसरा हुकूमत से किसी भी तरह का

---

[1] शरहे नहजुल बलाग़ा, इब्ने अबिल हदीद, जि. 1, पेज. ९०

कोई ग़लत फ़ाएदा उठाए। यहाँ तक कि कभी-कभी तो ग़लत फ़ाएदा भी नहीं कहा जा सकता था बल्कि हुकूमत में होने की वजह से एक तरह का बड़ा दर्जा या इज़्ज़त होती थी और वह भी ऐसी इज़्ज़त जो ख़लीफ़ा होने की वजह से दूसरे लोग उन्हें ख़ुद अपनी तरफ़ से देते थे लेकिन फिर भी इमाम अली[अ०] इस बात पर राज़ी नहीं होते थे जैसे अगर इमाम अली[अ०] कोई चीज़ ख़रीदने के लिए बाज़ार जाते थे तो ऐसा दुकानदार ढूँढते थे जो उन्हें न पहचानता हो कि यही ख़लीफ़ा हैं, बस इसलिए कि कहीं वह इमाम अली[अ०] के ख़लीफ़ा होने की वजह से उनके और दूसरों के बीच कोई फ़र्क़ न कर दे। इमाम अली[अ०] इतना भी अपने ख़लीफ़ा होने का फ़ाएदा नहीं उठाते थे।

अगर कोई आदमी पूरी तरह से अपना काम पूरा कर रहा हो और अपनी समाजी पोज़ीशन से कोई ग़लत फ़ाएदा न भी उठा रहा हो तब भी उसे अपनी पोज़ीशन को अपना हक़ (अधिकार) नहीं समझना चाहिए बल्कि कहना चाहिए कि यह तो बस मेरी ड्युटी है जिसे मैं पूरा कर रहा हूँ।

हक़ और ड्युटी में फ़र्क़ है। हक़ यानी फ़ाएदा उठाना और ड्युटी यानी जो काम दिया गया है उसे पूरी लगन से पूरा करना।

अब इसके बाद जब हम हज़रत अली[अ०] को देखते हैं तो पूरी तरह से बात अपने आप समझ में आ जाती है कि इमाम अली[अ०] तो इस चीज़ के लिए भी राज़ी नहीं थे कि अगर बाज़ार से कोई चीज़ ख़रीदना हो तो किसी ऐसे दुकानदार से ख़रीद लें जो उन्हें पहचानता हो कि कहीं ऐसा न हो कि ख़लीफ़ा होने की वजह से कम पैसे में वह चीज़ उन्हें बेच दे। इसका मतलब यह हुआ कि हुकूमत करना भी कोई हक़ नहीं है बल्कि एक इस्लामी ड्युटी है और ऐसी ड्युटी है जिस से बड़ी कोई ड्युटी हो ही नहीं सकती।

इमाम अली[अ०] गर्मी के मौसम में अपने सरकारी आफ़िस से निकलकर बाहर साए में बैठ जाते थे कि कहीं ऐसा न हो कि

इस गर्मी के मौसम में कोई मिलने आए और किसी वजह से न मिल सके।

सही मायनी में यह भी एक इबादत है और दूसरी तरफ़ से मुसीबतों भरी ज़िम्मेदारी भी।

हज़रत अली[अ०] ने जब क़सम बिन अब्बास को मक्के का गवर्नर बनाकर भेजा था तो उनके नाम एक लेटर लिखा था जिसमें यह भी लिखा थाः

> लोगों की ज़रूरतों को सुनने और पूरा करने के लिए सुबह-शाम एक ख़ास वक़्त पर बैठा करो। उनके सवालों के जवाब तुम ख़ुद दिया करो, अनपढ़ को पढ़ाओ और पढ़े-लिखों के साथ बैठ कर बात करो। और देखो! लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए अपनी ज़बान के अलावा किसी दूसरे टूल का इस्तेमाल मत करना और अपने चेहरे के अलावा कोई दूसरा पहरेदार मत रखना। साथ ही साथ किसी ज़रूरत वाले से मिलने से मना मत करना।[1]

मिस्र के गवर्नर मालिके अश्तर को लिखा थाः

> अपने वक़्त का एक हिस्सा अपने काम से आने वाले लोगों के लिए रख देना जिसमें सब कुछ छोड़कर बस उन्हीं के लिए बैठ जाना। उनके लिए एक आम बैठक लगाना और उस बैठक में अपने पैदा करने वाले अल्लाह के नाम पर छोटा बनकर उन लोगों से बात करना। फ़ौजियों, पहरेदारों और सिपाहियों को अपने पास से हटा देना ताकि कहने वाले बेधड़क अपनी बात कह सकें क्योंकि मैंने बार-बार अल्लाह के रसूल[स०] को यह कहते हुए सुना है कि उस समाज में मज़बूती आ ही नहीं सकती जिसमें कमज़ोरों को

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़त/67

> ताक़त वालों से खुल कर उनका हक़ नहीं दिलाया जाता।[1]

इसके बाद इमाम अली[अ०] एक बार फिर उसी बात पर ज़ोर देते हैं:

> ध्यान रखना! अपने लोगों से ज़्यादा दिनों तक दूर मत रहना क्योंकि हुकूमत करने वालों का अपने लोगों से छुपकर रहना एक तरह से आपसी दूरियों और उनके दुखों को न जान पाने की वजह बन जाता है।[2]

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़त/53
[2] नहजुल बलाग़ा, ख़त/53

(8)

इस्लाम में अधिकार

अल्लाह के भेजे हुऐ दीन यानी इस्लाम के अटल क़ानूनों में से एक अद्ल (इंसाफ़) भी है जिसका अपना पूरा एक इतिहास है। यूँ तो पहले के उलमा के बीच अद्ले इलाही (Divine Justice) से असली बात शुरू हुई थी लेकिन यह बात बढ़ते-बढ़ते सोशल जस्टिस तक पहुँच गई। बात जब यहाँ तक पहुँची तो फिर यह सवाल भी उठा कि जिस इंसाफ़ की बात इस्लाम करता है कि लोगों का आपसी मेलजोल इंसाफ़ की बुनियाद पर होना चाहिए, हर एक को उसका हक़ (अधिकार) मिलना चाहिए और किसी पर भी किसी तरह का कोई ज़ुल्म नहीं होना चाहिए तो क्या इसकी अपनी कोई असलियत भी है या नहीं?

अगर इस्लाम से हटकर देखा जाए तो क्या तब भी समाज में रहने वाले लोगों का एक-दूसरे पर अपना-अपना हक़ बनता है?

और अगर ऐसा है तो क्या इस्लाम ने इसी हक़ की बात की है और इसी पर चलने का हुक्म दिया है?

क्या इंसाफ़ का मतलब यह है कि जिसका जो हक़ है वह उसे पूरी तरह से दे दिया जाए?

या ऐसा नहीं है बल्कि अगर दीन के हुक्म को एक तरफ़ हटा दिया जाए तो फिर न तो इंसाफ़ की कोई जगह बाक़ी बचती है और न किसी तरह के हक़ की?

यानी क्या ऐसा है कि हक़ यानी अधिकार और इंसाफ़ सिर्फ़ दीन का बनाया हुआ सिस्टम है?

क्या बस अधिकार और इंसाफ़ वही है जिसे दीन ने अधिकार और इंसाफ़ कह दिया है और वही ज़ुल्म है जिसको दीन ने ज़ुल्म कह दिया है?

इस बीच मुसलमानों में कुछ ऐसे लोगों ने भी जन्म लिया जो सिरे से अद्‌ले इलाही (Divine Justice) को ही ठुकरा बैठे और उन्होंने एलान कर दिया कि अल्लाह का क़ानून इंसाफ़ से ऊपर है यानी अल्लाह का कोई भी क़ानून इंसाफ़ का पाबंद नहीं है और उसके किसी भी क़ानून को किसी भी तरह के हिसाब-किताब की ज़रूरत नहीं है। जो अल्लाह कर दे बस वही अद्‌ल (इंसाफ़) है। इन लोगों का यह मानना है कि ऐसा बिल्कुल नहीं है कि कोई काम करने से पहले अल्लाह को यह देखना पड़ता हो कि यह काम इंसाफ़ से मेल भी खा रहा है या नहीं। इसलिए अल्लाह ने जो कुछ भी हमें हुक्म दिया है बस वही अद्‌ल (Justice) है। ऐसा भी नहीं है कि दीन हमें बस उस चीज़ का हुक्म देता है जो सही और इंसाफ़ भरी होती है।

इतना कहने के बाद इन लोगों ने यह रिज़ल्ट भी निकाल लिया कि अगर इस दुनिया में किसी मोमिन और दीन रखने वाले आदमी को क़यामत में अल्लाह जहन्नम में भेज दे तो कोई बात नहीं और इसी तरह अगर किसी गुनाहों में डूबे आदमी को जन्नत में भेज दे तब भी कोई बात नहीं। इसी तरह अगर इस्लाम यह कह दे कि कुछ लोग बिना कुछ किए इस दुनिया की सारी चीज़ों से फ़ाएदा उठाएं तो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता और अगर कुछ लोगों के पास कुछ भी न हो तब भी कोई बात नहीं क्योंकि इंसाफ़ और ज़ुल्म की कोई असलियत है ही नहीं। असली चीज़ तो इस्लाम है और जो

इस्लाम कह दे बस वही इंसाफ़ है और जिसे इस्लाम ज़ुल्म कह दे बस वही ज़ुल्म है।

यह थ्योरी आम लोगों को बड़ी अच्छी लगी क्योंकि इसमें इस्लाम न अक़्ल का पाबंद था और न किसी क़ानून का। इस थ्योरी में लोगों को इस्लाम की एक तरह से बड़ाई और अच्छाई दिखाई पड़ रही थी कि इस्लाम किसी चीज़ के अंदर बंधा हुआ नहीं है। इसलिए यह थ्योरी लोगों के बीच बड़ी तेज़ी से फैलने लगी और बड़ी जल्दी पूरा एक इस्लामी फ़िरक़ा (ग्रुप) ही बन गया।

अद्ले इलाही (Divine Justice)

अद्ले इलाही पर इस सारी बातचीत से एक बहुत बड़ा रिज़ल्ट हाथ में आता है। पहली थ्योरी के हिसाब से इस्लाम यह मानता है कि दीन से हटकर भी अद्ल (इंसाफ़) की अपनी एक असलियत है जिसकी वजह से समाज में इंसाफ़ पर चलते हुए पूरा एक सिस्टम बनाया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि इस्लाम का हर क़ानून इंसाफ़ को सामने रखकर बनाया गया है।

जबकि दूसरी वाली थ्योरी में इस्लाम के पास कोई समाजी सिस्टम नहीं है। न किसी का कोई अधिकार है और न कोई अपना अधिकार मांग सकता है बल्कि इस्लाम तो सिरे से अधिकारों का ही इंकार करता है यानी इस्लाम जो कुछ कह दे बस उसी को आँखें बंद करके मान लो। इस मामले में किसी भी तरह का कोई सवाल मत उठाओ क्योंकि जिस चीज़ को इस्लाम इंसाफ़ कह दे बस वही इंसाफ़ है और जिस चीज़ को इस्लाम इंसाफ़ न कहे वह इंसाफ़ नहीं है।

शियों में अद्ले इलाही का कांसेप्ट

अगर इस हिसाब से देखें कि हम शिया हैं तो हमारे यहाँ अल्लाह के अद्ल को साबित करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि शियों के यहाँ अल्लाह का अद्ल उसूले दीन (दीन की जड़ों) में से है।

अधिकार

इस्लामी हिसाब से आदमी और इस दुनिया में पाई जाने वाली हर चीज़ के बीच एक गहरा रिश्ता पाया जाता है। फिर यह रिश्ता कुछ इस तरह का है कि अगर आदमी इस दुनिया में न होता तो इस दुनिया का सिस्टम ही कुछ दूसरी तरह का होता। क़ुरआन ने बार-बार इस बात का एलान किया है कि यह दुनिया और इसमें पाई जाने वाली हर चीज़ आदमी के लिए बनाई गई है। असल में क़ुरआन यह कहना चाह रहा है कि इस से पहले कि आदमी अपने हाथ-पैर चलाता, इस से पहले कि दीन आता, इस्लाम आता और अल्लाह के भेजे हुए नबी और रसूल लोगों तक इस्लाम का मैसेज लेकर आते... इन सारी चीज़ों से पहले ही आदमी और इस दुनिया के बीच एक अटूट रिश्ता बना दिया गया था। दुनिया पहले ही से आदमी के लिए तैयार कर दी गई थी यानी यह सारी नेमतें लोगों के लिए बनाई गई हैं। जैसे सूरए बक़रा की आयत/29 में हैः

> ज़मीन में जो कुछ भी है वह सब तुम्हारे लिए ही बनाया गया है।

इसी तरह सूरए आराफ़ की आयत/10 में जनाबे आदम[अ०] के बारे में बात करते हुए क़ुरआन कह रहा हैः

> बेशक! हम ने तुम्हें ज़मीन पर कंट्रोल दिया है और तुम्हारे लिए ज़िंदगी बिताने का सामान तैयार करके

> रख दिया है लेकिन तुम नेमतों का शुक्र बहुत कम करने वाले हो।

नेमतों के शुक्र का मतलब यह है कि किसी भी नेमत को उस काम में लाना जिसके लिए उसे बनाया गया है। क़ुरआन की बहुत सी आयतों ने इस बात को दोहराया है।

क़ुरआन से हटकर भी देखा जाए तो अगर हम ख़ुद गहराई में जाकर अपने आसपास के इस नेचर पर ध्यान दें और इसको समझने की कोशिश करें तो हमें अपने आप बेजान चीज़ों और पेड़-पौधों में एक रिश्ता दिखाई देने लगेगा। फिर इसी तरह इन दोनों चीज़ों और जानवरों के बीच भी एक रिश्ता नज़र आएगा और इन सबका आदमियों से भी एक बहुत गहरा रिश्ता दिखाई देगा। हमारी इस ज़मीन पर खाने-पीने की बहुत सी चीज़ें हैं और उधर से जानदारों को कुछ ऐसा बनाया गया है कि वह इन चीज़ों को खाकर ही ज़िंदा रह सकते हैं। अगर यह चीज़ें न हों तो सब मर जाएंगे। अब क्या कोई कह सकता है कि इस नेचर के अंदर खाने-पीने की इन सारी चीज़ों और आदमियों या दूसरे जानदारों के बीच कोई रिश्ता नहीं है? यह जो कुछ भी है वह सब बस एकदम से हो गया है?

अगर यूँ देखा जाए तो ख़ुद दीन से पहले नेचर ने ही इस अधिकार को मान रखा है। दीन और नेचर, दोनों ही अल्लाह की तरफ़ से हैं इसलिए अल्लाह ने अपने क़ानून को दुनिया पर छाए हुए नेचर को देखते हुए बनाया है। अल्लाह ने नेचर और अपने दीन को अलग-अलग तरह से नहीं बनाया है। क़ुरआन ने इन दोनों के आपसी रिश्ते को सूरए रूम की आयत/30 में बहुत साफ़-साफ़ बता दिया हैः

> अपने चेहरे को इस दीन की तरफ़ रोके रखिए! यह दीन वह इलाही फ़ितरत (Divine Nature) है जिस पर उसने आदमियों को बनाया है। अल्लाह की ख़िलक़त (रचना) में कोई बदलाव नहीं आ सकता।

क़ुरआन से हटकर देखा जाए तो भी ख़ुद यह नेचर चीख़-चीख़ कर ऐलान कर रहा है कि आदमी और इस नेचर में एक बहुत गहरा रिश्ता पाया जाता है और यह दोनों एक-दूसरे के लिए ही बनाए गए हैं।

ज़रा उस बच्चे को देखिए जो अभी-अभी इस दुनिया में आया है। यह बच्चा किस हालत में होता है? क्या यह अपने आप कुछ खा-पी सकता है? इसका पेट हर चीज़ को हज़म नहीं कर सकता मगर अल्लाह ने इसका पेट भरने के लिए कितना अच्छा सिस्टम बनाया है कि ख़ुद इसी बच्चे की माँ के सीने में इसके लिए दूध उतार दिया है। इस दुनिया में आने से पहले ही बड़े अजीब ढंग से इस बच्चे का पेट भरने के लिए सब से अच्छी चीज़ तैयार कर दी कि जैसे ही बच्चा इस दुनिया में अपनी आँख खोले उसे अपना पेट भरने के लिए हाथ-पैर न मारना पड़ें। क्या कोई कह सकता है कि बच्चे की भूख, उसकी माँ, माँ के सीने में दूध, यहाँ तक कि बच्चे के होंटों के बीच कोई रिश्ता नहीं है? क्या यह दूध इस बच्चे के लिए नहीं बनाया गया है?

बच्चे को इस दूध से अपना पेट भरने का अधिकार किसने दिया है? सामने की बात है कि अल्लाह के बनाए क़ानून ने।

यह दूध और दूध का यह कारख़ाना बच्चे के लिए ही बनाया गया है। इसका मतलब ख़ुद अल्लाह के बनाए क़ानून ने ही बच्चे को यह अधिकार दिया है कि वह इस दूध से अपनी भूख मिटाए। माँ के सीने से निकलने वाला यह दूध बस इसी बच्चे के लिए पैदा किया गया है, न कि किसी और काम के लिए।

इसी तरह हमारे नेचर में पाए जाने वाली चारों फ़सलें, बादल और बारिश वग़ैरा भी हैं। यह बारिश बिल्कुल उसी तरह है जिस तरह माँ के सीने से बच्चे के लिए दूध बरसता है। यह ज़मीन भी अपने बच्चों के लिए बारिश के पानी के रूप में आसमान से दूध ही बरसाती है जिससे सारी दुनिया के लोग

अपनी ज़िंदगी को आगे बढ़ाते हैं और अगर यह बारिश न हो तो सब कुछ मिट जाए।

सूरए नहल की आयत/10-11 में अल्लाह कह रहा हैः

> वह वही अल्लाह है जिसने आसमान से पानी भेजा है जिसका एक हिस्सा पीने के लिए है और एक हिस्से से पेड़-पौधे उगते हैं जिनसे तुम जानवरों को चराते हो। वह तुम्हारे लिए खेती, ज़ैतून, खजूर, अंगूर और दूसरे सारे फल इसी से उगाता है।
>
> इसमें समझदारों के लिए उसकी क़ुदरत (ताक़त) की निशानियाँ भी हैं।

इस बारे में क़ुरआन की बहुत सारी आयतें हैं जिन से यह साबित होता है कि इस दुनिया की हर चीज़ का एक-दूसरे के साथ बहुत गहरा रिश्ता है।

हज़रत अली[अ०] की एक हदीस में हैः

> हर जानदार के लिए रोज़ी-रोटी है और हर दाने का कोई न कोई खाने वाला है।

कहने का मतलब यह है कि खाने वाले और खाने वाली चीज़ों के बीच एक गहरा रिश्ता पाया जाता है और यह सब इसी नेचर का हिस्सा है।

इससे हटकर हक़दार[1] होने का एक तरीक़ा और भी है जिसमें हक़दार अपना हक़ ख़ुद बनाता है जैसे कोई आदमी एक पेड़ लगा दे। फिर उस पेड़ की देख-रेख करके उसे इतना बड़ा कर दे कि उस पर फल आने लगें। अगर कोई आदमी ऐसा कर ले तो वह पेड़ उसका हो जाता है और उस पेड़ पर उस का हक़ बन जाता है।

---

[1] अधिकार वाला

अक़्ल और इख़्तियार (Freewill)

आदमियों से मिलकर बनने वाले समाज का सिस्टम दूसरे सारे जानदारों से अलग है। दूसरे जानदारों का ज़मीन और ज़मीन की चीज़ों पर बस इतनी सी बात से अधिकार बन जाता है कि वह ज़मीन पर या ज़मीन में रहते हैं। उनके लिए बस इतना ही बहुत है लेकिन आदमी के साथ ऐसा नहीं है क्योंकि आदमी को अल्लाह ने समझ और इख़्तियार (Freewill) दिया है। अल्लाह चाहता है कि आदमी अपनी समझ और अपने इख़्तियार से अपनी ज़िंदगी बिताए। इसलिए जब तक वह अल्लाह की दी हुई ड्यूटी को पूरा नहीं करेगा तब तक वह अल्लाह के दिए हुए कंट्रोल से भी फ़ाएदा नहीं उठा सकता। हाँ! जब तक वह कुछ कर नहीं सकता तब तक बिना कुछ किए ही उसे उसका अधिकार मिलता रहेगा जैसे उसकी माँ का दूध बिना कुछ किए उसे मिल जाता है लेकिन अगर यह बच्चा माँ की गोद से उतर कर ज़मीन पर आ जाए और ज़मीन के सीने से दूध पीना चाहे तो अब पहले की तरह उसके लिए तैयार किया हुआ दूध नहीं मिलेगा बल्कि अब उसे काम करना पड़ेगा और मेहनत करना पड़ेगी। इस ज़मीन पर उसका हक़ तो है लेकिन इस हक़ के मुक़ाबले में उसे कुछ काम भी दिए गए हैं बल्कि यूँ कहा जाए कि ख़ुद ज़मीन का भी एक हक़ आदमी की गर्दन पर है जो आदमी को उसे देना होगा। इस हक़ का मतलब यह है कि इस ज़मीन को आबाद किया जाए, न कि बर्बाद जो कि क़ुरआन का ही एक हुक्म है।

इंसानों के ऊपर ज़मीन का हक़

हज़रत अली[अ०] ने अपनी हुकूमत के शुरू के दिनों में ही यह एलान कर दिया थाः

> तुम सब ज़िम्मेदार (जवाबदेह) हो और तुम सब लोगों के ऊपर कुछ ज़िम्मेदारियाँ[1] भी हैं, यहाँ तक कि दूसरे जानदारों व ज़मीन के बारे में भी तुम ज़िम्मेदार हो।[2]

यानी ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी ड्युटी बस अल्लाह के मुक़ाबले में या एक-दूसरे के साथ है बल्कि तुम से ज़मीन और जानवरों के बारे में भी सवाल किया जाएगा। यह मत समझना कि इन बोझ ढोने वाले जानवरों से तुम कुछ भी करवा लोगे क्योंकि तुम इनके मालिक हो। तुम यह नहीं कर सकते कि जितना चाहे बोझ इनके ऊपर लाद दो, चाहे उस बोझ से इनकी जान ही क्यों न निकली जा रही हो। तुम यह भी नहीं कर सकते कि तुम्हारा दिल चाहे तो इन्हें कुछ खाने को दे दो और न चाहे तो न दो, प्यासे हैं हुआ करें, भूखे हैं हुआ करें, चोट लग गई है लगा करे... नहीं! तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम्हें इनके बारे में जवाब देना होगा और तुम से एक-एक चीज़ के बारे में सवाल किया जाएगा।

इसी तरह ज़मीन भी है। तुम ज़मीनों को यूँ ही नहीं छोड़ सकते। इनको आबाद करने की ड्युटी तुम्हारी ही है क्योंकि अल्लाह ने तुम से ऐसा ही चाहा है।

इतना ही नहीं बल्कि हज़रत अली[अ०] ने मिस्र के उस वक़्त के गवर्नर मालिके अश्तर के नाम अपने सरकारी लेटर में भी इस बारे में सर्कुलर भेज दिया थाः

> यह हुक्म अल्लाह के बन्दे अमीरूल मोमिनीन अली की तरफ़ से मालिके अश्तर के नाम है जिन्हें मिस्र का गवर्नर बनाया जा रहा है ताकि वह टैक्स इकट्ठा करें, दुश्मनों से जिहाद करें, लोगों को आराम पहुँचाने और शहरों को आबाद करने की कोशिश करें।[3]

---

[1] ड्युटी
[2] नहजुल बलाग़ा, खुतबा/166
[3] नहजुल बलाग़ा, ख़त/53

अधिकार और ड्युटी में कनेक्शन

अधिकार और ड्युटी के बीच के कनेक्शन पर बात करते हुए इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> दो आदमियों में एक का हक़ दूसरे पर उसी वक़्त होता है जब दूसरे का भी उस पर हक़ हो और उसका हक़ उस पर तभी होता है जब पहले वाले का हक़ भी उस पर हो।[1]

इसका मतलब यह है कि अधिकार और ड्युटी एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। अगर किसी के पास कोई अधिकार है तो उसके मुक़ाबले में उसकी कोई न कोई ड्युटी भी ज़रूर होती है।

अल्लाह के रसूल[स०] ने फ़रमाया हैः

> अल्लाह की रहमत उस आदमी पर नहीं पड़ती है जो अपना बोझ दूसरों के कंधों पर डाल दे।[2]

यानी आदमी समाज में रहकर दूसरे लोगों से अपना अधिकार तो लेना चाहे लेकिन उसके मुक़ाबले में अपनी कोई ड्युटी पूरी न करे। इसका मतलब यह है कि अगर किसी को अपना अधिकार चाहिए तो उसके बदले में उसे अपनी ड्युटी भी पूरी करना पड़ेगी।

कमज़ोरों के अधिकार

सब जानते हैं कि इस्लाम ने हर आदमी के अपने माल में ग़रीबों, फ़क़ीरों और कमज़ोरों का हक़ भी रखा है।

सूरए इसरा की आयत/26 में अल्लाह फ़रमाता हैः

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/207

[2] उसूले काफ़ी, जि. 5, पेज. 72

> रिश्तेदारों, फ़क़ीरों और परदेस में फंसे हुए मुसाफ़िर को उसका हक़ दे दो।

सूरए मआरिज की आयत/24-25 में हैः

> मांगने वालों और जिन्हें नहीं मिला है उनके लिए मोमिनों के माल में एक हक़ तय है।

वह लोग जो कमज़ोर हों और कुछ कर न सकते हों या जो काम करते हों वह उनकी ज़रूरत को पूरा करने के लिए काफ़ी न हो तो ऐसे लोगों पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं है या यूँ कहा जाए कि जितनी उनके अंदर ताक़त है उनके ऊपर उससे ज़्यादा करने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है और उनसे इस बारे में सवाल भी नहीं किया जाएगा।

दूसरी तरफ़ से यह भी ठीक है कि वह कुछ कर नहीं सकते क्योंकि वह कर ही नहीं सकते लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी ज़रूरतों को पूरा ही न किया जाए और उन्हें कुछ दिया ही न जाए क्योंकि उनके और इस दुनिया में पाए जाने वाले सिस्टम के बीच जो कनेक्शन पाया जाता है और यहाँ जो यह नेचर का कारोबार फैला हुआ है इसमें उनका भी तो हिस्सा हैः

> अल्लाह ने इस ज़मीन को लोगों के लिए ही बनाया है।[1]

यानी अल्लाह ने यह ज़मीन सिर्फ़ कुछ लोगों के लिए नहीं बल्कि सब लोगों के लिए बनाई है।

अगर इन लोगों के अंदर ताक़त होती और यह अपने हाथ-पैर हिला सकते होते और फिर भी कुछ न करते तो इनकी सज़ा यह होती कि यह नेमतें इन्हें न मिलतीं लेकिन अभी तो ऐसा नहीं है क्योंकि यह तो कुछ कर ही नहीं सकते। जब कमज़ोर हैं तो इनका पहले वाला जन्मसिद्ध अधिकार अपनी जगह पर जूँ का तूँ टिका रहेगा। बूढ़ों, कमज़ोरों, ग़रीबों

---

[1] सूरए रहमान/10

और बेसहारा लोगों को उनका यह हक़ कौन देगा और उनकी यह ज़रूरतें कौन पूरी करेगा?

क़ुरआन कह रहा है कि उनका यह हक़ वह लोग देंगे जिन्हें अल्लाह ने पहले से दे रखा है और जिन्हें किसी के आगे हाथ फैलाना नहीं पड़ता है।

एक असली फ़र्क़

दुनिया वालों के समाजी सिस्टम और इस्लाम के समाजी सिस्टम में एक बड़ा फ़र्क़ तो यही है कि इस्लाम ने कमज़ोरों और बेबस लोगों को भी हक़ दिया है लेकिन इस्लाम से हटकर दुनिया के किसी भी सिस्टम में कोई भी हक़ बस उसी को मिलता है जो कुछ कर सकता हो और अपने हाथ-पैर चलाकर अपना हक़ ले सकता हो।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> हर जानदार के लिए रोज़ी-रोटी है और हर दाने को कोई न कोई खाने वाला है।

हज़रत अली[अ०] के एक मानने वाले ने उनसे कहा कि मुझे उस माल में से दे दीजिए जो जंगें जीतने के बाद मुसलमानों के हाथ लगा है। इमाम ने उस से कहाः

> वह तो मुसलमानों का माल है। अगर तुम उनके साथ थे और तुम ने भी उनके साथ जंगों की कठिनाइयाँ झेली हैं तो तुम उस माल में से ले सकते हो और तुम्हारा भी उस में हक़ होगा। अगर ऐसा नहीं है तो जो कुछ उन लोगों ने कठिनाइयाँ उठाकर पाया है वह उन्हीं का है, न कि दूसरों का।[1]

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/223

यानी जो भी कठिनाइयाँ उठाकर और मेहनत करके हलाल रास्ते से कुछ कमाएगा, ज़ाहिर है कि वह उसी का होगा। उस पर किसी दूसरे का हक़ कहाँ से हो सकता है? इस बात का तो मतलब ही नहीं बनता कि एक आदमी मेहनत करे और दूसरा जो उसी की तरह हट्टा-कट्टा है वह उसकी मेहनत से कमाए हुए माल में से अपना हिस्सा मांगने बैठ जाए।

समाजी अधिकार

इस्लाम ने अधिकारों (हक़) को बहुत बड़ा दर्जा दिया है। ह्युमेन राइट्स की इस्लाम में बहुत बड़ी जगह है। इसी तरह इंसाफ़ को भी इस्लाम बहुत ऊपर रखता है। ख़यानत (धोखा) और वह भी समाजी ख़यानत को इस्लाम ने सबसे बड़ी ख़यानत कहा है।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैं:

> सबसे बड़ी ख़यानत अपने समाज के साथ ख़यानत है।[1]

इस्लाम बहुत कम टाइम में और बहुत तेज़ी के साथ दुनिया के एक बहुत बड़े हिस्से में फैल गया था। इसकी वजह क्या थी? क्या ऐसा बस इस्लाम के बनाए हुए कुछ अख़लाक़ी उसूलों (Moral Values) की वजह से हो गया था?

नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है क्योंकि अगर इस्लाम ने सोशल रिफ़ार्म पर इतना ज़ोर न दिया होता तो Moral Values धरे के धरे रह जाते। इस्लाम आया तो उसने सब से पहले इंसाफ़, बराबरी, ह्युमेन राइट्स, आज़ादी जैसी चीज़ों का झंडा ऊँचा किया था और समाज में पाए जाने वाले हर तरह के भेद-भाव को मिटा दिया था जिसकी वजह से लोगों को बिल्कुल एक नई

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़त/26

दुनिया अपनी आँखों के सामने दिख रही थी। बाद में इस्लाम को जो नुक़सान पहुँचा वह भी इसी वजह से था कि बाद में आने वालों ने इन इस्लामी क़ानूनों को सिरे से अंदेखा कर दिया था और इनकी जगह अपने बनाए हुए क़ानून इस्लाम के नाम पर लोगों के ऊपर थोप दिए थे।

इस्लाम ने एक-दूसरे के हक़ पर बहुत ज़ोर दिया है। माँ-बाप का हक़, बच्चों का हक़, टीचर का हक़, ग़रीबों का हक़, पड़ोसियों का हक़, समाज का हक़ यानी हर एक को उस का हक़ दिया है और हक़ देने में इतनी बारीकी से काम लिया है कि किसी का कोई भी हक़ नहीं छूट पाया है।

सफ़र में साथ जाने वाले का हक़

एक दिन हज़रत अली[अ०] अपनी राजधानी कूफ़े से किसी काम के लिए कहीं बाहर गए। हमेशा की तरह उस दिन भी हज़रत अली[अ०] अकेले ही थे क्योंकि इमाम कभी भी अपने साथ लोगों की भीड़ लेकर नहीं चलते थे। वापसी में एक ईसाई या यहूदी भी मिल गया। वह आदमी हज़रत अली[अ०] को नहीं पहचानता था। दोनों ने एक-दूसरे से पूछा कि कहाँ जाना है। पता चला कि काफ़ी दूर तक दोनों का रास्ता एक ही है। दोनों साथ-साथ चल पड़े। बातें करते-करते एक ऐसी जगह पहुँच गए जहाँ से दोनों का रास्ता अलग हो जाता था। वह दूसरा आदमी अपने रास्ते पर चल दिया लेकिन हज़रत अली[अ०] अपने कूफ़े वाले रास्ते को छोड़कर उसके साथ-साथ चलने लगे। उसने कहा कि अभी तो आप कह रहे थे कि आपको कूफ़े जाना है, फिर मेरे रास्ते पर क्यों आ गए? इमाम ने कहा कि हाँ! जाना तो कूफ़े ही था। उसने कहा तो फिर इधर क्यों? इमाम ने कहा कि हमारे रसूल[स०] ने कहा है कि अगर दो लोग एक साथ कहीं जा रहे हों और दोनों को एक दूसरे से कोई फ़ाएदा हुआ हो तो दोनों का एक-दूसरे की गर्दन पर एक ''हक़'' बन जाता

है। इस सफ़र में मुझे तुम से फ़ाएदा हुआ है इसलिए मेरे ऊपर तुम्हारा हक़ है। इसलिए मैंने सोचा कि तुम्हारे उसी हक़ को पूरा करने के लिए कुछ दूर तक तुम्हारा साथ दे दूँ।

उस आदमी ने यह बात सुनी तो सोच में पड़ गया। काफ़ी देर तक सोचने के बाद बोला कि इस्लाम इसीलिए इतनी तेज़ी से फैला है क्योंकि तुम्हारे रसूल का अख़लाक़ (सदाचार) बहुत अच्छा था।

वह आदमी उस वक़्त हज़रत अली[अ०] को नहीं पहचानता था लेकिन बाद में एक दिन वह किसी काम से कूफ़े आ गया। कूफ़े आया तो उसने हज़रत अली[अ०] को हुकूमत करते हुए देखा। तब जाकर वह समझा कि उस दिन उसके साथ जो आदमी चल रहा था वह तो ख़ुद हुकूमत के मालिक अली बिन अबी तालिब[अ०] हैं। वह फ़ौरन मुसलमान हो गया और फिर जल्दी ही इमाम अली[अ०] के सहाबियों में गिना जाने लगा।

हज़रत अली[अ०] का इंसाफ़

वक़्त बीता तो हज़रत अली[अ०] का नाम इंसाफ़ के साथ अपने आप जुड़ गया। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ का कहना था कि अली[अ०] ने पिछले वालों को सब की यादों से निकाल दिया था और बाद में आने वालों के लिए मुसीबतें खड़ी कर दी थीं। इमाम अली[अ०] की हुकूमत के स्टाइल को देखकर लोग पिछले ख़लीफ़ाओं को बुरा-भला कहने लगे थे।

एक बार अमीरे शाम मुआविया का हज पर जाना हुआ। वहाँ उन्होंने एक ऐसी औरत के बारे में पूछा जो हज़रत अली[अ०] को मानने में और अमीरे शाम से दुश्मनी में मशहूर थी। लोगों ने बताया कि वह औरत अभी ज़िन्दा है। उसको बुलवाया गया।

जब वह आ गई तो उससे अमीरे शाम ने कहा, ''मैंने तुम्हें इसलिए बुलवाया है ताकि तुम से यह जान सकूँ कि तुम

अली[अ०] को इतना क्यों मानती हो और मुझ से इतनी दुश्मनी क्यों रखती हो?''

उसने कहा, ''अगर मुझ से इस बारे में न पूछिए तो अच्छा रहेगा।''

अमीरे शाम ने कहा, ''नहीं! तुम्हें जवाब देना ही पड़ेगा।''

उस औरत ने कहा, ''हज़रत अली[अ०] से मोहब्बत करने की वजह यह है कि वह इंसाफ़ करने वाले और सब के साथ बराबरी से काम लेने वाले थे। आपने उनके साथ बेकार में जंग की है। मैं हज़रत अली[अ०] को इसलिए इतना मानती हूँ क्योंकि वह ग़रीबों के हमदर्द थे और आप से इसलिए दुश्मनी करती हूँ क्योंकि आप बेवजह लोगों का ख़ून बहाते हैं, मुसलमानों के बीच दूरियाँ बढ़ाते हैं, आपकी कोर्ट में ज़ुल्म होता है और आप इस्लाम के हिसाब से नहीं बल्कि अपने दिल के हिसाब से हकूमत करते हैं।''

अमीरे शाम को बड़ा ग़ुस्सा आया। इतना ग़ुस्सा आया कि दोनों ने एक-दूसरे को बुरा-भला भी कह दिया लेकिन जब अमीरे शाम का ग़ुस्सा ठंडा हुआ तो उन्होंने अपनी आदत के हिसाब से उस औरत के साथ नर्मी से बात करना शुरू की और फिर पूछा, ''क्या तुम ने कभी अली[अ०] को अपनी आँखों से देखा भी है?''

उसने जवाब दिया, ''हाँ! देखा है।''

पूछा, ''कैसा पाया?''

उसने कहा, ''अल्लाह की क़सम! मैंने अली[अ०] को इस हाल में देखा है कि जिस हुकूमत ने आपको अपना दीवाना बना लिया है वह हुकूमत उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी थी।''

फिर पूछा, ''अच्छा! क्या तुम ने कभी अली[अ०] की आवाज़ भी सुनी थी?''

उसने कहा, ''बिल्कुल सुनी थी। उनकी आवाज़ तो दिलों को सुकून पहुँचाने वाली थी और दुश्मनियों को दिलों से निकाल बाहर फैंकती थी जिस तरह तेल लोहे से ज़ंग को साफ़ कर देता है।''

अमीरे शाम ने कहा, ''तुम्हें किसी चीज़ की कोई ज़रूरत तो नहीं है? कुछ चाहिए हो तो बताओ।''

उसने कहा, ''जो मैं मांगूगी मिल जाएगा?''

कहा, ''हाँ! जो माँगोगी मिल जाएगा।''

उसने कहा, ''मुझे लाल बालों वाले सौ ऊँट दे दीजिए।''

अमीरे शाम ने पूछा, ''अगर मैं दे दूँ तो क्या उसके बाद मैं तुम्हारी नज़र में अली[अ०] जैसा बन जाऊँगा?''

उस औरत ने कहा, ''नहीं! कभी नहीं।''

बहरहाल अमीरे शाम ने जैसे वह चाहती थी वैसे ही सौ ऊँट उसे देने का हुक्म दे दिया और उसके बाद कहा, ''अल्लाह की क़सम! अगर अली[अ०] आज ज़िन्दा होते तो तुम्हें एक ऊँट भी न देते।''

उसने कहा, ''अल्लाह की क़सम! ऊँट तो ऊँट, एक बाल भी न देते क्योंकि यह दूसरे मुसलमानों का माल है जिसमें से आप मुझे दे रहे हैं।''

अदी बिन हातिम ताई हज़रत अली[अ०] के बड़े सहाबियों में थे जो इमाम से बहुत मोहब्बत करते थे। वह रसूले इस्लाम[स०] के आख़िरी सालों में मुसलमान हुए थे। हज़रत अली[अ०] की हुकूमत में इमाम के साथ-साथ थे। तरीफ़, तरफ़ा और तारिफ़ नाम के इनके तीन बेटे सिफ़्फ़ीन की जंग में हज़रत अली[अ०] की तरफ़ से जंग करते हुए शहीद हो गए थे। हज़रत अली[अ०] की शहादत के बाद अमीरे शाम की हुकूमत में इनका एक बार सीरिया जाना हुआ। अमीरे शाम ने अदी को उनके तीनों बेटों की मौत को याद दिलाते हुए चाहा कि उनके मुँह से हज़रत अली[अ०] के बारे में कुछ ऐसा सुन लें जिससे दिल ख़ुश हो जाए। इसलिए अदी से सवाल किया, ''कहाँ गए तुम्हारे तीनों बेटे?''

अदी ने अमीरे शाम की आँखों में आँखें डालकर कहा, ''तीनों सिफ़्फ़ीन की जंग में हज़रत अली[अ०] की तरफ़ से लड़ते हुए शहीद हो गए।''

''हज़रत अली^अ० की तरफ़ से'' अदी ने इस बात को बहुत ज़ोर देकर कहा ताकि यह भी बता सकें कि मैं भी उनके हज़रत अली^अ० की तरफ़ से लड़ने पर राज़ी था और मुझे उनके शहीद होने पर ख़ुशी है।

अमीरे शाम ने कहा, ''अली^अ० ने तुम्हारे साथ इंसाफ़ नहीं किया क्योंकि तुम्हारे बेटों को मरने के लिए पहले भेज दिया और अपने बेटों को रोके रखा ताकि वह बचे रहें।''

अदी ने कहा, ''नहीं! ऐसी बात नहीं हैं बल्कि मैं ही उनके साथ इंसाफ़ नहीं कर पाया क्योंकि वह तो शहीद हो गए मगर मैं ज़िन्दा रह गया।''

अमीरे शाम ने देखा कि किसी भी तरह बात नहीं बन पा रही है, इसलिए अपना तरीक़ा बदल लिया और कहा, ''अच्छा चलो! ज़रा मुझे कुछ अली^अ० के बारे में बताओ।''

अदी ने कहा, ''मुझ से यह काम न करवाओ तो अच्छा है।''

कहा, ''नहीं! तुम्हें बताना ही पड़ेगा।''

जब अमीरे शाम नहीं माने तो अदी ने कहना शुरू कियाः

> अल्लाह की क़सम! अली^अ० बहुत गहरी नज़र रखने वाले और बड़ी ताक़त वाले इंसान थे। हर पल बस इंसाफ़ की ही बातें करते थे और बड़े मज़बूत फ़ैसले करते थे। इल्म[1] तो उनके अंदर से फूटता था। उन्हें दुनिया की चमक-दमक बिल्कुल नहीं भाती थी। रात के सन्नाटे से बड़ी मोहब्बत करते थे। रोते बहुत थे और सोचते भी बहुत थे। अकेले में होते थे तो ख़ुद अपनी ही ज़िंदगी का हिसाब-किताब करते रहते थे और बीत चुकी ज़िंदगी पर हाथ मला करते थे। उन्हें सादा कपड़े और ग़रीबों वाली ज़िंदगी बड़ी अच्छी लगती थी। हमारे बीच में होते थे तो लगता था जैसे वह भी हम में से ही हैं। अगर हम उन से कुछ माँगते थे तो फ़ौरन दे देते थे। अगर

---

[1] ज्ञान

> हम उनके पास जाते थे तो वह हमें अपने ही पास बिठाते थे और हम से दूर नहीं जाते थे। यह सब कुछ होने के बाद भी उनका रौब इतना था कि हम लोगों के अंदर उनके सामने बोलने की हिम्मत भी नहीं होती थी और डर इतना था कि उनकी तरफ़ आँख उठाकर देख भी नहीं पाते थे। जब वह मुसकुराते थे तो दाँत मोतियों की तरह चमकते थे। वह मोमिनों की बड़ी इज़्ज़त करते थे। ग़रीबों के साथ बड़ी हमदर्दी दिखाते थे। न किसी ताक़त वाले को उनकी तरफ़ से किसी ज़ुल्म का ख़तरा था और न किसी कमज़ोर को इंसाफ़ न मिलने का डर।
> अल्लाह की क़सम! एक रात मैंने ख़ुद अपनी आँखों से देखा था कि रात, काली रात हर तरफ़ छाई हुई थी। वह मस्जिद में खड़े इबादत कर रहे थे और उनकी आँखों से टप-टप आँसू बह रहे थे। साँप के काटे की तरह तड़प रहे थे और किसी मुसीबत में डूबे हुए की तरह रो रहे थे। अब ऐसा लगता है कि जैसे अभी भी उनकी आवाज़ मेरे कानों में आ रही है कि जैसे कह रहे हों कि ऐ दुनिया! क्या तू फिर मेरी तरफ़ आना चाह रही है? जा! मेरे पास से कहीं और चली जा! जा किसी और को जाकर धोखा दे! मैं तो तुझे तीन तलाक़ें दे चुका हूँ और मुझे तेरी तरफ़ वापस भी नहीं आना है। तेरे मज़े बेकार और तेरी हैसियत कुछ भी नहीं है। अफ़सोस! सफ़र इतना लम्बा है मगर सफ़र का सामान और साथी बहुत कम हैं।

जैसे ही अदी बिन हातिम ताई की बात यहाँ तक पहुँची, अमीरे शाम की आँखों से आँसू बहना शुरू हो गए। अपनी आसतीन से आँसू पोंछते हुए कहा, ''अब ज़रा यह भी बता दो कि अली[अ०] के जाने के बाद तुम पर क्या बीत रही है?''

अदी ने कहा, ''भला ज़माना ऐसा है कहाँ कि कोई हज़रत अली[अ०] को भुला सके?''

(9)

आज की जवान पीढ़ी

यह इस्लामी क़ानून हम सभी जानते हैं कि इस्लाम में ड्युटी या ज़िम्मेदारी के हिसाब से सब बराबर हैं यानी ज़िम्मेदारियों में सब एक दूसरे के साथ हैं।

एक हदीस में हैः

तुम सब एक-दूसरे के ज़िम्मेदार हो।[1]

एक-एक मुसलमान ही नहीं बल्कि मुसलमानों की पीढ़ियाँ भी एक-दूसरे की ज़िम्मेदार हैं। हर पीढ़ी को अपने बाद आने वाली पीढ़ी के बारे में जवाब देना होगा कि यह इस्लामी सिस्टम जो पिछली पीढ़ियों से होता हुआ उन तक पहुँचा है उसे संभाल कर रखा या नहीं और आगे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाया या नहीं यानी इस दीन के लिए आने वाली पीढ़ियों को तैयार किया कि नहीं। इसलिए नई पीढ़ी को कैसा रास्ता दिखाया जाए इस पर बात करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह एक बहुत बड़ी इस्लामी ड्यूटी है जो मुसलमान समाज के हर आदमी से जुड़ी हुई है।

इस बारे में सब से ख़ास बात यह है कि किसी एक पीरियड के लोगों या किसी एक पीढ़ी को मिलने वाला गाइडेंस दूसरी

---

[1] जामेउस्सग़ीर/95

पीढ़ियों के जैसा नहीं हो सकता बल्कि हालात व पीरियड के हिसाब से बदलता रहता है जिसके कई अलग-अलग रूप हो सकते हैं। नई पीढ़ी को रास्ता दिखाने के लिए जिन रिसोर्सेस का इस्तेमाल किया जाता है वह भी बदलते रहते हैं। कोई एक नुस्ख़ा नहीं है कि उसी से हर मरीज़ का इलाज कर दिया जाए। इसलिए हर पीरियड और हर हालत में अलग-अलग तरह से बहुत गहराई के साथ और बड़े ही ध्यान से देखना होगा कि अपनी नई पीढ़ी को किस तरह रास्ता दिखाया जा सकता है और उसे आगे बढ़ाने के लिए कौन सा नुस्ख़ा दिया जा सकता है।

दो तरह के काम

दीन ने जो काम हमें सौंपे हैं वह दो तरह के हैंः

(1) कुछ काम ऐसे हैं जिनका अपना एक ख़ास रूप और तरीक़ा होता है जिसके बारे में दीन ने हमें पहले से ही बता दिया है। दीन ने यह भी बता दिया है कि इन कामों को कैसे और किन शर्तों के साथ पूरा किया जाएगा। इस तरह के कामों की दूसरी ख़ास बात यह है कि इन कामों का अपना एक तय रिज़ल्ट होता है जो हर हाल में मिलेगा लेकिन हम उस रिज़ल्ट के लिए जवाबदेह नहीं हैं। आम बोलचाल में हम इस तरह के कामों को इबादत[1] कहते हैं जैसे नमाज़ जिसकी हर चीज़ पहले से तय है, शक्ल-सूरत, हालत, वक़्त और शर्तें यानी हर चीज़ पहले से तय है।

इस्लाम का हुक्म यह है कि हम नमाज़ हमेशा इसी तरह से पढ़ें। नमाज़ में हम अपनी तरफ़ से कुछ भी बदलाव नहीं कर सकते लेकिन नमाज़ चाहे इस शक्ल में हो या अल्लाह किसी

[1] प्रार्थना

और शक्ल में पढ़ने के लिए हम से कहता, दोनों हालतों में इसका अपना एक रिज़ल्ट है बल्कि कई रिज़ल्ट हैंः

बेशक! नमाज़ बुराईयों और बुरे कामों से बचाती है।[1]

लेकिन नमाज़ जैसी चीज़ों में हमारी ड्युटी बस नमाज़ की शर्तों को पूरा करना है, न कि रिज़ल्ट तैयार करने की ड्युटी। अगर शर्तें उस तरह से पूरी कर दीं जिस तरह से पूरा करने का हुक्म दिया गया है तो मिलने वाला रिज़ल्ट अपने आप मिल जाएगा।

(2) दूसरी तरह के काम वह हैं जिन में हम ख़ुद रिज़ल्ट के लिए जवाबदेह हैं यानी यह काम अपने रिज़ल्ट को आदमी के कंधों पर डाल देते हैं और उससे कहते हैं कि मुझे वह वाला रिज़ल्ट चाहिए लेकिन यह कि वह रिज़ल्ट कैसे मिलेगा, किस रास्ते से मिलेगा, किस तरीक़े से मिलेगा, किन शर्तों को पूरा करने से मिलेगा... यह सब आदमी को ख़ुद तय करना है। इन कामों को पूरा करने के लिए पहले से तय कोई क़ानून या फ़ार्मूला नहीं है। इनमें से हर काम का तरीक़ा वक़्त के हिसाब से बदलता रहता है।

इस मिसाल को देखिएः

मान लीजिए कि कोई आदमी किसी मुसीबत में घिरा हुआ है। जेल में हैं। वह एक ऐसा आदमी चाहता है जो पहले से तय उसका एक काम करके उसकी यह मुसीबत दूर कर दे। जैसे वह किसी आदमी को एक लेटर देता है और किसी दूसरे आदमी का नाम लेकर कहता है कि यह लैटर ठीक पाँच बजे उस आदमी को दे आना। यह लेटर किसी ख़ास काम के लिए लिखा गया है लेकिन लैटर ले जाने वाला बस उस लेटर को पहुँचाने के लिए जवाबदेह है। जेल में बंद आदमी को भी इस से कोई मतलब नहीं है कि जिसके पास लैटर जा रहा है वह किस तरह और किस तरीक़े से उस आदमी को जेल से निकालेगा। उसको तो बस जेल से बाहर निकलना है। यह काम

---

[1] सूरए अन्कबूत/45

उस आदमी का है कि वह ख़ुद तय करे कि कौन सा तरीक़ा सब से अच्छा होगा जिस से वह जल्दी से जेल से बाहर निकल आए।

आमतौर पर इस तरह के काम तब कराए जाते हैं जब किसी काम को करने का कोई एक तरीक़ा नहीं होता यानी कई या बहुत से तरीक़े हो सकते हैं। वक़्त और हालात बदलते हैं तो काम का तरीक़ा भी अपने आप बदल जाता है। इस तरह के काम पूरे करने के लिए ज़रूरी है कि हिसाब-किताब लगाकर किसी सही रास्ते को चुना जाता है।

इस्लाम ने हमें ऊपर वाले दोनों तरह के काम दिए हैं। नमाज़, रोज़ा, हज और इस तरह की दूसरी सारी इबादतें पहले वाले कामों में आती हैं लेकिन जिहाद दूसरी तरह के कामों में आता है। जिहाद में मुसलमानों पर वाजिब है कि इस्लाम और मुसलमानों को बचाने के लिए आगे आएं लेकिन कैसे? तलवार से या तोप से या किसी और चीज़ से? दीन ने हमें यह नहीं बताया है और दीन बता भी नहीं सकता क्योंकि इस चीज़ को पहले से तय किया ही नहीं जा सकता। यह मुसलमानों का काम है कि वह कोई भी वक़्त या हालात हों, अपने आप को सब से अच्छे ढंग से तैयार रखेंः

> उनके (दुश्मनों के) मुक़ाबले में जितनी हो सके उतनी ताक़त इकट्ठा करो।[1]

इसलिए अब यह मुसलमानों का काम है कि अपने बचाव के लिए हालात को देखकर वह ख़ुद ही फ़ैसला करें कि उन्हें क्या करना है और किस तरह की ताक़त जुटाना है।

लीडरशिप और गाइडेंस भी दूसरे वाले कामों में से हैं। मुसलमान एक-दूसरे को रास्ता दिखाने और एक-दूसरे को गाइड करने के लिए जवाबदेह हैं। अब जो लोग रहबर (लीडर) हैं उनकी ड्युटी और बड़ी हो जाती है। बहरहाल रिज़ल्ट मिलना चाहिए यानी गाइडेंस और सही रास्ते पर कैसे आया

---

[1] सूरए अनफ़ाल/60

जाए यह पता होना चाहिए। यह काम कैसे होगा, यह हमें नहीं बताया गया है और पहले से बताया भी नहीं जा सकता क्योंकि यह पहले से तय करने की चीज़ है ही नहीं। यह तो हालात और वक़्त को देखकर तय किया जाता है कि कौन से हालात में कौन सा तरीक़ा ज़्यादा काम करेगा। किस रास्ते पर चलें कि जल्दी से अपने ठिकाने तक पहुँच जाएं।

सूरए तहरीम की आयत/6 में अल्लाह फ़रमाता हैः

> अपने आप को और अपने घर वालों को उस आग से बचाओ जिसका इंधन लोग और पत्थर होंगे।

यह आयत हम से साफ़-साफ़ रिज़ल्ट मांग रही है लेकिन रिज़ल्ट तक कैसे पहुँचना है यह बिल्कुल नहीं बता रही है क्योंकि यह हमें ही तय करना है कि इस आग से कैसे बचना है और अपने घर वालों को भी बचाना है।

इस्लाम में लीडरशिप और गाइडेंस के लिए 100% कोई गाइड-लाइन नहीं दी गई है कि पहले ही से हर चीज़ के बारे में बता दिया गया हो कि यह शर्तें हैं, यह रूकावटें है और यह तरीक़े हैं क्योंकि वक्त बदलेगा तो हालात भी अपने आप बदल जाएंगे, फिर शर्तें, रूकावटें और तरीक़े भी बदल जाएंगे। लीडरशिप नमाज़-रोज़े की तरह नहीं है या यूँ कहिए कि यह दुआ पढ़ने या मंत्र पढ़ने जैसी कोई चीज़ नहीं है कि सामने वाले को एक मंत्र याद है और जैसे ही साँप या बिच्छू ने डंक मारा उसने झट से वह मंत्र पढ़ दिया और मरीज़ ठीक हो गया।

काम करने का तरीक़ा

कभी ऐसा होता है कि कोई चीज़ एक वक़्त में बड़े काम की होती है लेकिन वही चीज़ दूसरे वक़्त या दूसरी जगह पर किसी काम की नहीं रहती बल्कि रास्ते से ही भटका देती है।

वही एक बात जो किसी बूढ़ी औरत को मोमिना बना देती है वही बात एक पढ़े-लिखे जवान को रास्ते से दूर भी कर सकती है। एक किताब एक वक़्त में बहुत काम की हो सकती है और लोगों को सीधा रास्ता दिखा सकती है लेकिन वही किताब दूसरे वक़्त में बहका भी सकती है। हमारे यहाँ ऐसी बहुत सी किताबें हैं जो पहले बड़े काम की थीं जिन से हज़ारों-लाखों लोगों ने सही रास्ता चुन लिया था लेकिन वही किताबें आज हमारे वक़्त में किसी काम की नहीं है और किसी को रास्ता नहीं दिखा पातीं। बल्कि यूँ कहा जाए कि वही किताबें आज के लोगों के दिमाग़ों में तरह-तरह के शक भर रही हैं और उन्हें भटका रही हैं। ऐसी किताबों को ख़रीदने-बेचने और छापने में तो दीनी हिसाब से मुश्किल भी हो सकती है।

बड़ी अजीब सी बात है ना! वही किताब जिसने पहले वाले न जाने कितने लोगों को सीधा रास्ता दिखाया था वही किताब आज सही रास्ते से भटका रही है?! जी हाँ! आसमानी किताबों और मासूमीन[अ०] की ज़बान से निकलने वाली सच्ची बातों के अलावा दुनिया की हर किताब अपने एक ख़ास वक़्त के लिए ही होती है। जैसे ही वह वक़्त बीत जाता है उस किताब का काम भी ख़त्म हो जाता है।

अभी हम जिस बारे में बात कर रहे हैं यानी नई पीढ़ी का मार्ग-दर्शन, यह एक बहुत बड़ा समाजी मामला है जो अभी तक हमारे लिए एक सवाल बना हुआ है। इस को हल होना चाहिए। इस पर हमें बार-बार बात करना चाहिए और इतनी बात करना चाहिए कि हमारे दिमाग़ों में बैठ जाए कि लीडरशिप के लिए पहले से बना हुआ कोई क़ानून नहीं होता। क़ानून तो वक़्त और हालात के हिसाब से बदलते रहते हैं।

आइए! ज़रा देखें कि इस्लाम इस बारे में क्या कह रहा है।

सूरए नहल की आयत/125 में हैः

> अपने पालने वाले के रास्ते की तरफ़ हिकमत (Wisdom) व अच्छी नसीहतों के साथ बुलाओ और उन से उस तरीक़े से बात करो जो सबसे अच्छा है।

यह आयत लोगों को अल्लाह के रास्ते पर बुलाने और उन्हें दीन का सीधा रास्ता दिखाने के लिए हमें तीन तरीक़े बता रही है और इन तीनों तरीक़ों में से हर एक अपने ख़ास काम के लिए है। सब से पहले अल्लाह कह रहा है कि लोगों को अपने पालने वाले की तरफ़ बुलाओ जिसके लिए ''रब'' शब्द इस्तेमाल किया गया है। जहाँ रब शब्द आता है वहाँ इसके मायनी में परवरिश व तरबियत (Upbringing) के मायनी भी छुपे होते हैं। चूँकि लोगों को उनकी तरबियत के लिए बुलाया जा रहा है इसलिए इस आयत में रब शब्द का इस्तेमाल हुआ हैः लोगों को अपने रब की तरफ़ बुलाओ यानी उस रास्ते की तरफ़ बुलाओ जिस पर चलकर उनकी तरबियत की जा सके और उन्हें सही रास्ते पर लगाया जा सके। लोगों को हिकमत के रास्ते से बुलाओ। हिकमत यानी ऐसी मज़बूत बातें जिनमें कोई कमज़ोरी न हो और जिनमें किसी तरह का कोई शक न किया जा सके। लोगों को अपने पालने वाले की तरफ़ हिकमत, दलील[1] (तर्क), 100% ख़ालिस (Pure) इल्म और ख़ालिस अक़्ल के साथ बुलाओ।

क़ुरआन की तफ़सीर करने वाले उलमा का कहना है कि हिकमत, दलील, 100% ख़ालिस[2] इल्म और ख़ालिस अक़्ल के साथ बुलाने का हुक्म उन ख़ास लोगों के लिए है जो यह काम कर भी सकते हों।

इस आयत के अगले हिस्से में हैः *वल मो-इ-ज़-तिल ह-स-ना* यानी लोगों को अच्छी और दिल को छू जाने वाली बातों के साथ अपने पालने वाले की तरफ़ बुलाओ। कुछ लोगों के अंदर समझदारी भरी और अच्छी बातों को समझने की क़ाबिलियत[3] नहीं होती और अगर उनके सामने गहरी बातें की जाएं तो वह उलझ जाते हैं। ऐसे लोगों को समझाने का रास्ता नसीहत है। मिसालें, क़िस्से-कहानी, नसीहत या इसी तरह की

---

[1] तर्क
[2] प्योर
[3] योग्यता

बातों से ही उनके दिल को नर्म किया जा सकता है और बस इसी तरह से उन्हें रास्ता दिखाया जा सकता है। नसीहतें सीधे दिल पर जाकर असर करती हैं और इसके मुक़ाबले में हिकमत (Wisdom), दलील और समझदारी भरी बातों का सरोकार हमारी अक़्ल व सोच से होता है।

इसके बाद आयत कहती है कि अगर तुम्हारा सामना किसी ऐसे आदमी से हो जाए जो असल बात को समझना ही न चाहता हो बल्कि बस बहस करना चाहता हो, किसी ऐसी बात की पकड़ में रहता हो जिसको थाम कर सामने वाले पर अपनी उंगली उठा दे और फिर ख़ूब शोर मचाए तो क़ुरआन ऐसे लोगों के बारे में कहता है कि उनके साथ उनके जैसा तरीक़ा मत अपनाओ बल्कि ऐसे लोगों से सब से अच्छे तरीक़े से बात करो। बात करो तो सही रास्ते से मत भटको, सही बात से दूर मत हो जाओ, बेइंसाफ़ी मत करो और झूठ से काम मत लो।

इस आयत ने लोगों को रास्ता दिखाने के कई तरीक़े बताए हैं और हर तरीक़ा एक ख़ास काम के लिए है। इस से यह साबित होता है कि सीधा रास्ता दिखाने के लिए किसी एक ख़ास तरीक़े या रास्ते को पकड़ कर नहीं चला जा सकता।

नबियों के पास अलग-अलग मोजिज़े[1] क्यों थे?

इस बारे में एक मशहूर हदीस भी है जो हमारी इस बात को भी साबित करती है। यूँ तो यह हदीस अलग-अलग टाइम में नबियों के मोजिज़ों के बारे में है लेकिन यह हमारी बात को भी साबित कर रही है। यह हदीस उस सवाल के जवाब में है जो इब्ने सिक्कीत ने इमाम अली नक़ी[अ०] से किया था।

इब्ने सिक्कीत उस वक़्त के एक मशहूर स्कॉलर थे। उन्होंने इमाम अली नक़ी[अ०] से पूछा था कि ऐ रसूल के बेटे! हज़रत

---

[1] चमत्कार

मूसा[अ०] को अल्लाह ने छड़ी से साँप बन जाने वाला और उसके जैसे दूसरे मोजिज़े (चमत्कार) दिए थे लेकिन हज़रत ईसा[अ०] को जो मोजिज़े दिए वह बिल्कुल अलग थे जैसे वह कोढ़ियों का इलाज करते थे और मुर्दों को ज़िंदा करते थे। जब हमारे रसूल[स०] आए तो उनका मोजिज़ा तो सब से ही अलग था जिसे हम क़ुरआन कहते हैं।

इमाम अली नक़ी[अ०] ने फ़रमाया कि ऐसा हालात और वक़्त के बदलने की वजह से है। हज़रत मूसा[अ०] के वक़्त में जो चीज़ लोगों के दिमाग़ों पर छाई हुई थी वह जादू और जादूगरी थी। इसलिए हज़रत मूसा[अ०] का मोजिज़ा भी उन्हीं लोगों के कामों जैसा था लेकिन इस फ़र्क़ के साथ कि जो कुछ हज़रत मूसा[अ०] करते थे उस में सच्चाई होती थी लेकिन वह लोग जो कुछ करते थे वह बस जादू होता था या नज़रबंदी। हज़रत ईसा[अ०] के वक़्त में ऐसे-ऐसे लोग पैदा हो गए थे जो मेडिकल साइंस में बहुत आगे थे और अजीब-अजीब बीमारियों का इलाज कर देते थे। इसलिए अल्लाह ने उन्हें उसी के हिसाब से मोजिज़ा दिया। हमारे रसूल[स०] का वक़्त लिट्रेचर, शायरी और इल्म का वक़्त था। लोग अच्छे लिट्रेचर की तरफ़ आँख बंद करके भागते थे। इसलिए अल्लाह के आख़िरी रसूल[स०] को जो मोजिज़ा मिला वह उनके वक़्त के हिसाब से था।

इब्ने सिक्कीत को यह जवाब बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा कि मैं आपकी बात पूरी तरह से समझ गया हूँ। इसके बाद कहा कि ऐ रसूल के बेटे! आज ज़मीन पर अल्लाह की हुज्जत (मोजिज़ा) क्या है? इमाम ने कहा कि अक़्ल।

इब्ने सिक्कीत बोले कि अल्लाह की क़सम! ऐसा ही है।

इमाम अली नक़ी[अ०] के इस जवाब से हमारी बात भी साबित हो जाती है कि नबियों के अलग-अलग मोजिज़ों की वजह यह थी कि हर पीरियड में लोगों को रास्ता दिखाने का तरीक़ा भी अलग-अलग होता है, नहीं तो हज़रत आदम[अ०] से लेकर आख़िरी नबी तक हर नबी के पास एक जैसा ही मोजिज़ा भी हो सकता था लेकिन ऐसा नहीं हुआ बल्कि हर नबी को एक

अलग मोजिज़ा देकर भेजा गया जो उस वक़्त के ख़ास हालात व शर्तों के हिसाब से होता था।

नबियों वाला तरीक़ा

अल्लाह के रसूल[स०] की एक बड़ी मशहूर हदीस है जो मशहूर किताब *उसूले काफ़ी* में लिखी हुई है। अहले सुन्नत की किताबों में भी यह हदीस मिलती है। अल्लाह के रसूल[स०] फ़रमाते हैः

> हम रसूलों से कह दिया गया है कि हम लोगों की समझ को देखकर उनसे बात किया करें।[1]

अल्लाह के रसूल[स०] कह रहे हैं कि हम जिस से भी बात करते हैं पहले उसकी समझ को देखते हैं कि कितनी है। उसके बाद उसकी समझ के हिसाब से ही उस से बात करते हैं। जिसकी समझ-बूझ ज़्यादा होती है उस से उस हिसाब से बात करते हैं और जिसकी समझ-बूझ कम होती है उस से उस हिसाब से बात करते हैं। किसी आम आदमी से बात करते हैं तो उस से बहुत गहरी बातें नहीं करते कि वह समझने के बजाए उलटा उलझ जाए। जब किसी पढ़े-लिखे व समझदार आदमी से बात करते हैं तो उस से उसके लेवल पर आकर बात करते हैं।

नबियों और फ़िलास्फ़र्स के बीच एक फ़र्क़ यह पाया जाता है कि फ़िलास्फ़र्स हमेशा एक ही लेवल पर रहकर बात करते हैं। उनके पास अपनी दुकान में दूसरों को देने के लिए बस एक ही तरह का सामान होता है। उनके ख़रीदार भी बस एक ही तरह के होते हैं और यह फ़लास्फ़र्स की कमी है क्योंकि यह लोग अपनी बात को बस एक ही तरह से कह सकते हैं यानी यह लोग अपनी बात को एक ख़ास शब्दावली में पिरोकर ही

---

[1] उसूले काफ़ी, जि. 1, पेज. 23

कह सकते हैं जिसकी वजह से बस वही लोग उनकी बातों को समझ पाते हैं जो इस शब्दावली को जानते हैं। इन लोगों से हटकर उनकी बातें कोई नहीं समझ पाता। दुनिया का मशहूर फ़िलास्फ़र अफ़लातून (Plato) ग्रीस की राजधानी एथेंस का रहने वाला था। कहते हैं कि वह एक बाग़ में पढ़ाता था और उस बाग़ का नाम एकेडिमिया था। इसी वजह से आज भी जहाँ लिट्रेरी काम होता है उस जगह को एकेडमी कहते हैं। उस बाग़ के दरवाज़े पर एक बोर्ड लगा हुआ था जिस पर लिखा थाः ''जिस ने मैथ्मेटिक्स न पढ़ी हो वह यहाँ न आए।''

जो तरीक़ा अल्लाह के भेजे हुए नबी और रसूल अपनाते हैं उससे हर तरह के लोग फ़ाएदा उठा सकते है क्योंकि उनके पास दूसरों को देने के लिए फ़िलास्फ़र्स की तरह बस एक ही तरह का सामान नहीं होता बल्कि उनके पास हर तरह का सामान होता है। बड़ी से बड़ी चीज़ भी होती है कि प्लेटो भी आकर सीखने के लिए बैठ जाए और छोटी से छोटी चीज़ भी कि किसी गाँव की रहने वाली कोई बुढ़िया भी अपने मतलब का सामान उठा ले। किसी भी नबी के ''एकेडिमिया'' के दरवाज़े पर ऐसा बोर्ड नहीं मिलेगा जिस पर लिखा हो कि यहाँ पढ़ने व सीखने के लिए आने वाले लोगों के अंदर यह-यह बातें या यह-यह शर्तें होना चाहिएं। यह अलग बात है कि जो जितना ज़्यादा पढ़ा-लिखा और समझदार होगा वह यहाँ से उतना ही ज़्यादा लेकर जाएगा। जिसकी समझ कम होगी वह भी अपने हिसाब से लेकर जाएगा क्योंकिः

> ''हम रसूलों को हुक्म दिया गया है कि लोगों की समझ को देखकर उनसे बात किया करें।''

यहीं से यह बात भी समझ में आ जाती है कि फ़िलास्फ़र्स के सब से अच्छे शागिर्द वही लोग हुआ करते थे जो ख़ुद उनके ज़माने में उनके सामने मौजूद हुआ करते थे और सीधे उन्हीं से सीखते थे लेकिन नबियों व रसूलों के मामले में ऐसा नहीं है।

अफ़लातून[1], अरस्तू[2], सुक़रात[3] या बू अली सीना[4] के बेहतरीन शार्गिद वही लोग हैं जिन्होंने ख़ुद सीधे इन्हीं लोगों से पढ़ा है लेकिन रसूले इस्लाम[स०], हज़रत अली[अ०] या इमाम सादिक़[अ०] के शार्गिद कौन हैं? क्या इन हस्तियों के सब से अच्छे शार्गिद भी वही लोग हैं जिन्होंने सीधे इन्हीं लोगों से सीखा और पढ़ा है या यहाँ मामला उलटा है?

इस बारे में ख़ुद रसूले इस्लाम[स०] ने हमें रास्ता दिखा दिया है। अगर हम सलमान, अबूज़र और मिक़दाद जैसे कुछ लोगों को छोड़ दें तो शायद रसूल की इस ऊपर वाली हदीस को ख़ुद उनके ज़माने के लोग भी सही से नहीं समझ पाए थे। अल्लाह के रसूल[स०] फ़रमाते हैं:

> अल्लाह उस आदमी की मदद करे जो मेरी बातें सुनने के बाद उन्हें संभाल कर रखे और फिर उन लोगों तक पहुँचाए जिन तक मेरी बातें अभी नहीं पहुँच सकी हैं।[5]

या यह हदीस:

> अल्लाह ऐसे लोगों की मदद करे जो यह काम करें। उसके बाद फ़रमाया कि न जाने कितने ऐसे लोग हैं जो एक फ़िक़्ह (इल्म) को उठाए फिरते हैं लेकिन उनके अंदर उस इल्म को संभालने की ताक़त नहीं होती और न जाने कितने ऐसे लोग हैं जो अपने से बड़े फ़क़ीह (आलिम) के पास उस फ़िक़्ह को पहुँचा देते हैं।[6]

इस हदीस में अल्लाह के रसूल[स०] ने *फ़िक़्ह* शब्द इस्तेमाल किया है। फ़िक़्ह दीनी हिसाब से उस सच्चाई और उस

---

[1] Plato
[2] Aristotle
[3] Socrates
[4] Avecenna
[5] अमाली, शेख़ मुफ़ीद, मजलिस. 23, पेज. 186
[6] फ़ुरूऐ काफ़ी, जि. 5, पेज. 293

हिकमत[1] को कहते हैं जिसे समझने के लिए बहुत ध्यान देना पड़ता है। इस हदीस में अल्लाह के रसूल[स०] उन बातों की तरफ़ इशारा कर रहे हैं जो ख़ुद उन्होंने लोगों के बीच बताई थीं। अल्लाह के रसूल[स०] फ़रमाते हैं कि मेरी ज़बान से मेरी इन बातों को सुनने वाले बहुत से लोग इन बातों को नहीं समझ सकते। बहुत से लोग मेरी इन बातों को आगे चलकर दूसरों के बीच रखेंगे और उन तक पहुँचाएंगे। जिन लोगों तक मेरी यह गहरी बातें पहुँचाई जाएंगी वह आज के इन लोगों से कहीं बढ़कर मेरी बातों को समझेंगे।

जैसे हो सकता है कि कोई आदमी ख़ुद अल्लाह के रसूल[स०] से कोई हदीस सुने लेकिन उस हदीस से वह कुछ भी न समझ सके मगर उस हदीस को अगले लोगों तक पहुँचा दे। आगे आने वाले लोग उस हदीस को ज़्यादा अच्छे ढंग से समझेंगे। वह लोग भी उसे अगली पीढ़ियों की तरफ़ बढ़ा दें और इसी तरह यह हदीस आगे बढ़ती रहे। हर आने वाली नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी से बढ़कर उस हदीस को समझेगी।

क़ुरआन भी इसी तरह है। कोई नहीं कह सकता कि क़ुरआन को पहले वाले लोग ज़्यादा अच्छी तरह से समझ पाते थे बल्कि मामला बिल्कुल उलटा है। क़ुरआन का मोजिज़ा[2] तो यह है कि क़ुरआन पर लिखी जाने वाली हर तफ़सीर पिछली तफ़सीर से अच्छी होती है यानी हर दौर में क़ुरआन की तफ़सीर लिखी गई है और हर आने वाले टाइम में जब देखा गया तो समझ में आया कि पिछली तफ़सीरों में जो कुछ लिखा गया था अब उनका टाइम निकल गया है, अब तो नए सिरे से तफ़सीर लिखी जाना चाहिए क्योंकि अब क़ुरआन एक नई तफ़सीर चाहता है।

दूर मत जाइए! इल्मे फ़िक़्ह (Islamic Jurisprudence) को ही ले लीजिए। इस बात में कोई शक नहीं है कि अल्लाह के रसूल[स०], हज़रत अली[अ०] या इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] के सहाबी

---

[1] Wisdom

[2] चमत्कार

जैसे ज़ुरारह, हिशाम और इब्ने अल-हकम वग़ैरा भी बाद में आने वाले उलमा जैसे मोहक़्क़िक़े हिल्ली, अल्लामा हिल्ली या शेख़ मुर्तज़ा अंसारी की तरह हदीसों को नहीं समझ पाते थे।

अब अगर हम फ़िलास्फ़र्स की बात करें तो उनकी बातों को वह लोग ज़्यादा अच्छे ढंग से समझते हैं जो उनके टाइम से ज़्यादा क़रीब होते हैं लेकिन नबियों और रसूलों या अल्लाह के भेजे हुए दूसरे मासूमीन[अ०] की जहाँ तक बात है तो उनकी बातें वह लोग ज़्यादा अच्छी तरह समझते हैं जो बाद के टाइम में आने वाले हैं जिनका इल्म और जिनकी समझ पहले वालों से ज़्यादा होगी। नुबुव्वत व रिसालत का अपने आप में यह ख़ुद एक मोजिज़ा है।

तौहीद के बारे में जो हदीसें हैं उनमें लिखा हुआ है कि अल्लाह को पता था कि आख़िरी पीरियड में ऐसे लोग आंएगे जो ज़्यादा सोच-विचार और रिसर्च करने वाले होंगे इसीलिए अल्लाह ने सूरह तौहीद (*क़ुल हुवल लाहु अहद*) और सूरए हदीद की शूरू की आयतें उतारीं जो तौहीद के बारे में बहुत गहरी बातों की तरफ़ इशारा करती हैं यानी उस वक़्त के लोग इन आयतों की गहराई को समझ ही नहीं सकते थे, आने वाले टाइम में ऐसे लोग आएंगे जो इन आयतों को बड़ी अच्छी तरह से समझेंगे। इन आयतों में एक बड़ी ख़ास बात है कि इन में तौहीद की जो भी आख़िरी हद (सीमा) हो सकती थी वह बता दी गई है, अब जो भी इस हद से आगे बढ़ेगा वह सीधे रास्ते से भटक जाएगा और दीन से बाहर निकल जाएगा। यह है नुबुव्वत और क़ुरआन का मोजिज़ा जिसके बारे में इमाम अली[अ०] ने नहजुल बलाग़ा के ख़ुतबा/100 में फ़रमाया हैः

> जिसकी ताज़गी कभी ख़त्म नहीं होती और जिसकी अजीब-अजीब बातें कभी कम नहीं होतीं।

ऊपर जो बातें कही गई हैं वह इसलिए कही गई हैं ताकि कोई यह न कह दे कि आज की हमारी इस नई पीढ़ी और पिछली पीढ़ियों के गाइडेंस और उनकी लीडरशिप में भी भला कोई फ़र्क़ है क्या? क्या इनकी और उनकी नमाज़ें अलग-

अलग हैं कि इनको एक अलग तरह से रास्ता दिखाया जाए? जैसे पिछली पीढ़ियों को रास्ता दिखाया जाता था वैसे ही आज भी दिखाया जा सकता है। पहले कैसे दादा-पौते मजलिसों में एक साथ जाया करते थे और वहीं से दीन लेकर आते थे, आज भी हमारी नई नौजवान पीढ़ी मजलिसों में ही जाकर दीन के बारे में सीख सकती है।

नई पीढ़ी या नई सोच

जब हम कहते हैं नई पीढ़ी तो इसका मतलब बस जवान ही नहीं होते बल्कि इसका मतलब समाज का वह क्लॉस होता है जो एजुकेशन और माडर्न कल्चर के आ जाने से एक नई सोच वाला बन गया है, अब यह लोग बूढ़े भी हो सकते हैं और जवान भी। वैसे इस क्लॉस में आमतौर से जवान ही होते हैं। इसीलिए ''जवान पीढ़ी'' कहा जाता है वरना ऐसे बहुत से बूढ़े भी हैं जिनकी सोच बिल्कुल नई व माडर्न है और ऐसे भी बहुत से नौजवान हैं जिनकी सोच और सोचने का तरीक़ा बिल्कुल बूढ़ों जैसा और पुराना है। बहरहाल हम उस क्लॉस के बारे में बात कर रहे हैं जिसकी अपनी एक ख़ास सोच है जो धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही है। आने वाले वक़्त में जवान और बूढ़े इसी सोच को अपनाएंगे। अल्लाह न करे अगर हम ने अपनी नई पीढ़ी को रास्ता दिखाने के लिए कुछ नहीं किया तो हमारा आने वाला कल पूरी तरह से हमारे हाथ से निकल जाएगा। यह आज के मुस्लिम समाज का एक बहुत बड़ा इश्यु है। दूसरे मुस्लिम मुल्कों में भी यही मामला है लेकिन वहाँ वालों ने हम से पहले इस इश्यु के बड़ा होने को समझ लिया है और अभी से इस पर काम करना शुरू कर दिया है। अभी तो हम इस इश्यु की गहराई और ख़तरे को भांप भी नहीं पाए हैं। आमतौर पर तो हम लोग यही मानते हैं कि नई पीढ़ी को यानी उन जवानों को तो दो-चार बातें करके ही सही रास्ता

दिखाया जा सकता है जो अपने आप में और अपनी दुनिया में मगन रहते हैं। इनके साथ माथा-पच्ची करने से क्या फ़ाएदा? लेकिन यह सब दिल को बहलाने वाली बातें और लोरियाँ हैं। हम सो रहे हैं इसलिए हमें यह सारी बातें ऐसी ही लगती हैं। जब हमारी आखें खुलेंगी तो उस वक़्त सब कुछ हाथ से निकल चुका होगा।

अपने वक़्त को समझने वाले बनो

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] की एक हदीस है जिसमें एक बड़ी ख़ास बात कही गई है। हदीस इस तरह से हैः

> जो आदमी अपने वक़्त को पहचानता और समझता है उसके ऊपर उलझा देने व परेशान कर देने वाली बातें हमला नहीं कर पातीं।[1]

इस हदीस में "هجوم" (हुजूम) शब्द आया है कि उलझा देने वाली बातें उस पर हुजूम नहीं करतीं। हुजूम हमारी उर्दू ज़बान में तेज़ हमले को कहते हैं लेकिन अरबी ज़बान में हुजूम का मतलब होता है एक ऐसा हमला जो अचानक किया जाए और जो सामने वाले को सीधे रास्ते से हटाकर किसी और रास्ते पर लगा दे।

इमाम सादिक़[अ०] फ़रमा रहे हैं कि अगर कोई अपने वक़्त को पहचानता होगा तो उसके ऊपर अचानक शकों की बौछार नहीं होगी कि उसके होश ही उड़ जाएं और अपने बचाव का रास्ता ही न ढूँढ सके। अपने आप में यह हदीस बहुत शानदार हदीस है।

इसी हदीस में दूसरी बातें भी हैं जैसे जो अपनी समझदारी को ठीक से काम में नहीं लाता वह कभी कामयाब नहीं हो

---

[1] उसूले काफ़ी की जि. 1, पेज.26

सकता और जिसके पास इल्म न हो वह ठीक से सोच ही नहीं सकता।

इमाम की इस बात का मतलब यह है कि इल्म से अक़्ल व समझ बढ़ती है। अक़्ल यानी समझने-बूझने की ताक़त, चीज़ों को एक-दूसरे से जोड़ने की ताक़त और कुछ चीज़ों को सामने रखकर उनसे मिलने वाले रिज़ल्ट के बारे में सोचने की ताक़त। अक़्ल, इल्म से ताक़त लेती है क्योंकि अक़्ल एक ऐसा चिराग़ है जिसका तेल इल्म है।

हम लोग इमाम सादिक़[अ०] की इस हदीस के बिल्कुल उलट हैं जिसमें इमाम फ़रमाते हैं कि ''जो आदमी अपने टाइम को पहचानता है उसके ऊपर उलझा देने वाली बातें हमला नहीं कर पातीं''। हम अपने आसपास की हर चीज़ से अंजान हैं। यूँ ही आसपास की हर चीज़ से अंजान बने बैठे-बैठे ऊँघ रहे हैं। अचानक जब एक हमला होता है तो हमारी आँख खुलती है लेकिन तब तक सब कुछ लुट चुका होता है।

इसी तरह उन सब बातों से भी अंजान हैं जो इस वक़्त दुनिया में हो रही हैं या पर्दे के पीछे हैं। अचानक औरतों के सोशल स्टेटस पर सवाल उठ जाता है लेकिन हमारे पास कुछ करने का वक़्त ही नहीं होता। हमारे पास इस बारे में इतना सोचने का भी वक़्त नहीं होता कि यही सोच लें कि जो लोग औरतों के सोशल राइट्स की बात कर रहे हैं वह अपने इस दावे में सच्चे भी हैं कि नहीं? क्या यह लोग खुले दिल से यह बात कह रहे हैं या इस के पीछे इनकी कोई और चाल है? ऐसे ही एक के बाद एक हमले होते रहेंगे और हम यूँ ही अंजान बने बैठे रहेंगे।

60 या 100 साल से ज़्यादा पहले से भी दूसरे मुसलमान मुल्कों में इस तरह के मामलों पर या जवानों के मार्ग-दर्शन पर बात होती आ रही है और वह लोग इस बारे में जाग चुके हैं यानी उनकी आँखें खुल चुकी हैं मगर हम अभी तक गहरी नीदं सो रहे हैं।

अब करना क्या चाहिए?

इस नई पीढ़ी के लिए कोई नया प्रोजेक्ट तैयार करने से अच्छा यह है कि पहले हमारे दिमाग़ में यह बात अच्छी तरह से बैठ जाना चाहिए कि जवानों का मार्ग-दर्शन वक़्त, हालात और लोगों के हिसाब से बदलता रहता है। हमें अपने दिमाग़ से यह बात पूरी तरह से निकाल कर बाहर फेंक देना चाहिए कि इस नई पीढ़ी को भी पिछली पीढ़ियों वाले तरीक़ों से ही रास्ता दिखाया जा सकता है।

सब से पहले हमें अपनी जवान पीढ़ी को समझना होगा कि तुम्हारी इस पीढ़ी में क्या-क्या सलाहियतें (Skills) हैं और इस पीढ़ी को क्या-क्या चाहिए? इस पीढ़ी के बारे में आमतौर पर दो बातें बहुत चर्चा में रहती हैं और इस बारे में दो तरह से सोचा जाता है।

कुछ लोगों का मानना है कि यह पीढ़ी बड़ी कमज़ोर, घमंडी, अपनी दुनिया में खोई हुई, अपनी दुनिया में मगन और हज़ारों तरह की बुराइयों में जकड़ी हुई पीढ़ी है। इस तरह के लोग हमेशा इस पीढ़ी को बुरा-भला कहते दिखाई पड़ते हैं।

दूसरी तरफ़ से अगर इस पीढ़ी को ख़ुद इन जवानों की नज़र से देखा जाए तो उन्हें अपने अंदर कोई बुराई नहीं दिखती। यह ख़ुद को बहुत समझदार, तेज़ और बड़े-बड़े ख़्वाबों में डूबा हुआ देखते हैं। पुरानी पीढ़ी इस नई पीढ़ी को ख़ूब बुरा-भला कहती है। इन्हें बेवक़ूफ़ व जाहिल भी कहती है। वह इन्हें बहका हुआ और रास्ते से भटका हुआ भी बताती है लेकिन यह नौजवान उन से कहते हैं कि आपको कुछ नहीं पता, आपकी समझ में कुछ नहीं आता क्योंकि अब लोग पुराने ज़माने के हो गए हैं।

वैसे अगर देखा जाए तो एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी के मुक़ाबले में अच्छी भी हो सकती है और रास्ते से भटकी हुई भी हो सकती है।

दो अलग–अलग पीढ़ियाँ

क़ुरआन के सूरए अहक़ाफ़ में एक ऐसी आयत भी है जो एक तरह से एक साइन बोर्ड है जिसमें एक अच्छी पीढ़ी और एक भटकी हुई पीढ़ी के बारे में बताया गया है। यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि आने वाली पीढ़ी को पिछली वाली पीढ़ी के मुक़ाबले में भटका हुआ ही होना है और हर आने वाली पीढ़ी के साथ दुनिया को ख़राबी की तरफ़ जाना ही जाना है। इसी तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि आने वाली पीढ़ी पिछली वाली पीढ़ी से ज़्यादा अच्छी होगी और भटकी हुई नहीं होगी।

जिस आयत के बारे में हम बात कर रहे हैं वह यह हैः

> हम ने इंसान को हुक्म दिया है कि वह अपने माँ–बाप के साथ अच्छे ढंग से रहे। उसकी माँ ने बड़ी तकलीफ़ के साथ उसे अपने पेट में रखा है और बड़े दर्द के साथ जन्म दिया है और उसके हमल (Pregnancy) और दूध बढ़ाई का कुल टाइम 30 महीने का है।
>
> यहाँ तक कि जब उस में ताक़त आ गई और चालीस साल का हो गया तो उसने दुआ की कि ऐ पालने वाले! मुझे अपनी इस नेमत का शुक्र करने की तौफ़ीक़ दे जो तूने मुझे और मेरे माँ–बाप को दी है और मैं ऐसा अच्छा काम करूँ जिस से तू राज़ी हो जाए और मेरी नस्ल में भी अच्छी औलाद रख दे। मैं तेरी ही तरफ़ पलटने वाला हूँ और उन लोगों में से हूँ जो तेरे सामने अपना सर झुकाए हुए हैं।[8]

यह आयत एक पीढ़ी की सोच और उसके सोचने के ढंग को बता रही है। कहा गया है कि यह आयत इमाम हुसैन[अ०] के बारे में है लेकिन अगर देखा जाए तो यह आयत एक दूसरी बात भी कर रही है।

इस आयत में अच्छी पीढ़ी के कुछ गुण बताए गए हैं। पहला यह कि अल्लाह की नेमतों के सामने उसका शुक्र करनाः *''मुझे अपनी इस नेमत का शुक्र करने की तौफ़ीक़ दे जो तूने मुझे और मेरे माँ-बाप को दी है।''* यह उन्हीं नेमतों की तरफ़ इशारा है जो अल्लाह ने इन दो पीढ़ियों को दी हैं। इसी आयत में फिर यह दुआ है कि *''पालने वाले! मुझे ताक़त दे कि मैं तेरा शुक्र कर सकूँ और पिछली नेमतों को तेरी मर्ज़ी के हिसाब से इस्तेमाल करूँ।''* किसी भी नेमत का सब से अच्छा शुक्र यह होता है कि उस नेमत को उस काम में लाया जाए जिस काम के लिए वह नेमत दी गई है।

दूसरी बात यह है कि अल्लाह से तौफ़ीक़ मिलने की दुआ की जाए। ऐसे काम करने की ताक़त मिलने की दुआ मांगी जाए जिनके करने से अल्लाह राज़ी हो जाए।

तीसरी बात यह है कि इस आयत में अगली पीढ़ी का भी ध्यान रखा जा रहा है और उसके बारे में भी दुआ की जा रही है।

चौथी बात यह है कि अपनी पिछली ग़ल्तियों और कमियों पर तौबा भी की जाए।

पाँचवीं बात यह है कि हर हाल में अल्लाह के सामने पूरी तरह से अपना सर झुका दिया जाए। अल्लाह के क़ानूनों को न मानने से ही आदमी बर्बाद होता है।

इसके बाद अगली आयत इस तरह से हैः

> यही वह लोग हैं जिनके अच्छे कामों को हम क़ुबूल करते हैं और जिनकी कमियों को हम अंदेखा कर देते हैं। यही लोग जन्नत वालों में से हैं और यह अल्लाह का वादा है जो बराबर उन से किया जाता रहा है।[1]

अगली आयत भटकी हुई पीढ़ी के बारे में हैः

---

[1] सूरए अहक़ाफ़/16

> जिसने अपने माँ-बाप से यह कहा कि कितने दुख की बात है कि आप दोनों मुझे इस बात से डराते हैं कि मैं दोबारा क़ब्र से निकाला जाऊँगा जबकि मुझ से पहले भी बहुत सी क़ौमें जा चुकी हैं और वह दोनों (माँ-बाप) दुखी थे कि यह तो बड़े दुख की बात है। बेटा! ईमान ले आओ! अल्लाह का वादा बिल्कुल सच्चा है तो वह कहने लगा कि यह सब पुराने लोगों की कहानियाँ हैं।[1]

इस पीढ़ी को देखिए! यह भी एक पीढ़ी है जो घमंडी, कमज़ोर और सीधे रास्ते से भटकी हुई है। दो बातें कानों में पड़ी नहीं कि अब कुछ नहीं सुनना है और न अब अल्लाह का बन्दा बनना है। जिस बच्चे के बारे में यह आयत बात कर रही है वह अपने माँ-बाप की बेइज़्ज़ती करता है और उनके अक़ीदे व सोच पर हंसता भी है। कहता है कि आप दोनों मुझे क़यामत से डरा रहे हैं जबकि दूसरी बहुत सी क़ौमें और पीढ़ियाँ इस दुनिया में आईं और आकर चली गईं, मर-खप गईं और अब कोई उनका नाम लेने वाला भी नहीं है। माँ-बाप जो कि दीनदार हैं वह उसकी बात मानने को तैयार नहीं हैं और न दीन व ईमान के ख़िलाफ़ कुछ सुनने को राज़ी हैं। दोनों अपना दुख जताते हुए कहते हैं कि बेटा! ऐसा मत कहो क्योंकि अल्लाह का वादा सच्चा है।

कोई भी दीनदार माँ-बाप हों उनके लिए यह बात बहुत दुख देने और दिल तोड़ देने वाली होती है कि उनके बच्चे दीन से दूर हो जाएं और दीन को ही ठुकरा बैठें। यह वह वक़्त होता है जब उनके दिल से निकलने वाली आहें अल्लाह की चौखट से जाकर टकराती हैं। लेकिन बच्चे उनकी हर बात के मुक़ाबले में बस यही कहते हैं कि अरे! यह सब पिछले वालों की गढ़ी हुई कहानियाँ हैं।

---

[1] सूरए अहक़ाफ़/17

ऊपर की यह दो आयतें दो अलग-अलग पीढ़ियों की अलग-अलग हालत बता रही हैं जिनमें से एक पीढ़ी अच्छी थी और दूसरी बहकी हुई।

आइए! अब देखते हैं कि हमारी अपनी जवान पीढ़ी कैसी है और किस रास्ते पर जा रही है?

आज की जवान पीढ़ी

हमारी इस जवान पीढ़ी के अंदर कुछ अच्छाइयाँ भी हैं और कुछ बुराइयाँ भी। इस पीढ़ी के अंदर कुछ ऐसा एहसास (Feelings) और समझदारी पाई जाती है जो पहले वाले लोगों में नहीं थी। यह इस पीढ़ी की अच्छाई है लेकिन साथ ही साथ इस पीढ़ी के अंदर एक तरह की बुराई भी पाई जाती है जिसे दूर करने की पूरी कोशिश करना चाहिए। इस कमी को उस वक़्त तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक इस पीढ़ी की अच्छाईयों यानी इस के एहसास, समझदारी और ऊँचे से ऊँचा उड़ने की चाहत को ध्यान में न रखा जाए। पहले वाली पीढ़ियों की सोच इतनी ऊँची और खुली हुई नहीं हुआ करती थी। न वह लोग ज़्यादा दूर तक सोच पाते थे। इसलिए इन बातों को मान दिया जाना चाहिए क्योंकि इस्लाम ने भी इन बातों को मान दिया है। अगर हम ने इन बातों को अंदेखा कर दिया तो हम इस पीढ़ी की बिगड़ी हुई सोच और बुराइयों को किसी भी तरह दूर नहीं कर सकते। अभी हम इस मामले में सुधार लाने के लिए जो कुछ कर रहे हैं वह बस इन जवानों को बुरा-भला कहने और इनकी बुराई करने ही तक है कि इन के कपड़े ऐसे, इन का रहन-सहन ऐसा, इन की चाल-ढाल ऐसी और इनका उठना-बैठना ऐसा मगर इन सारी बातों से कुछ नहीं होने वाला। इस बिगाड़ को ख़त्म करने के लिए कोई मज़बूत काम करना होगा।

इस पीढ़ी की बातों को समझना होगा

कोई मज़बूत काम तभी हो सकेगा जब हम इन जवानों की मुश्किलों और इन के दर्द को समझने की कोशिश करेंगे। इनका दर्द और इनकी मुश्किल वही एहसास है जो पिछली पीढ़ियों के पास नहीं था। पिछली पीढ़ियों के ऊपर दरवाज़े बंद थे। दरवाज़े तो दरवाज़े, खिड़कियाँ भी बंद थीं। किसी को बाहर की दुनिया के बारे में कुछ पता ही नहीं हुआ करता था। दूसरी दुनिया की तो बात ही अलग है ख़ुद अपने शहर में क्या हो रहा है उन्हें इसकी भी जानकारी नहीं हुआ करती थी। आज यह दरवाज़े और यह खिड़कियाँ खुल गई हैं जिन से हमारे जवान ख़ुद अपने आसपास ही नहीं बल्कि सारी दुनिया को देख रहे हैं। वह देख रहे हैं कि आज सारी दुनिया तरक़्क़ी कर रही है, आगे बढ़ रही है, साइंस कहाँ से कहाँ पहुँच गई है, दुनिया की फ़ौजी, सियासी व आर्थिक ताक़तें कहाँ से कहाँ उड़ी जा रही हैं, डेमॉक्रेसी अलग अपना ढिंढोरा पीट रही है, आपसी बराबरी के नारे लगाए जा रहे हैं, ह्युमेन राइट्स और वीमेन राइट्स के नारों से कान फटे जा रहे हैं, हर तीसरे मुल्क में किसी न किसी तरह का मूवमेंट चल रहा है और यह सारी चीज़ें यह जवान पीढ़ी ख़ुद अपनी आँखों से देख रही है जिससे इन जवानों की सोच व समझ बहुत खुल गई है और इमोशंस व फ़ीलिंग्स बहुत ऊपर आ गई हैं। अब अगर एक जवान कहता है कि मुझे भी आगे बढ़ना है और आसमान में उड़ना है तो वह क्या ग़लत कहता है?

दुनिया आगे बढ़ती रहे और वह बस तमाशा देखता रहे? यह नहीं हो सकता। यह है आज के जवानों का दर्द और उनका दुख।

पहले वाले लोग इन बातों को समझ ही नहीं पाते थे क्योंकि उनकी आँखों पर पर्दे पड़े हुए थे।

अगर आज की हमारी यह पीढ़ी हम से यह सब कुछ पूछ रही है तो क्या उसे यह पूछने का हक़ भी नहीं है?

पहले वाले लोगों की सोच बहुत बंधी हुई होती थी। बहुत कम लोगों के दिमाग़ में शक या सवाल जन्म लेते थे लेकिन अब ऐसा नहीं है। आज के जवानों के दिलों में तो इतने सवाल हैं कि वह सवाल करते-करते नहीं थकते लेकिन हम जवाब देते-देते थक जाते हैं। सामने की बात है कि जैसे ही आदमी की सोच ऊपर जाएगी वैसे ही सवाल भी अपने आप बढ़ जाएंगे लेकिन पहले ऐसा नहीं था। इन सवालों के जवाब उन्हें मिलना चाहिएं और उनके दिल में जो भी शक जन्म लें उन्हें दूर किया जाना चाहिए। हम किसी जवान से यह नहीं कह सकते कि यह क्या सवालों की रट लगा रखी है? छोड़ो यह सब और पलट जाओ अपनी पुरानी वाली हालत पर। हमें तो इस हालत पर ख़ुश होना चाहिए क्योंकि इस नई पीढ़ी के बीच इस्लाम को फैलाने का यह बहुत अच्छा वक़्त है। किसी जाहिल के सामने तो इल्म की कोई बात नहीं की जा सकती लेकिन पढ़े-लिखों के सामने बहरहाल की जा सकती है।

इसीलिए पहले वाली सीधी-साधी पीढ़ियों को रास्ता दिखाने के लिए अलग तरह की दीनी तबलीग़ और एक ख़ास पॉलिसी की ज़रूरत थी लेकिन आज वह पॉलिसी, वह तरीक़ा, वह किताबें और दीन को फैलाने का वह ढंग किसी काम का नहीं है। अब इस काम में रिफ़ार्म व सुधार होना चाहिए जो आज की बोली, आज की सोच और आज के कल्चर के हिसाब से हो और फिर उसी हिसाब से इस नई जवान पीढ़ी को अल्लाह का सीधा रास्ता दिखाकर आगे बढ़ाया जाए।

पहले की हालत यह थी कि अगर किसी मजलिस में कोई एक ही वक़्त में एक दूसरे से बिल्कुल उलट दो ऐसी बातें कर देता था तो लोग समझ भी नहीं पाते थे और जब समझ ही नहीं पाते थे तो कहते क्या लेकिन आज ऐसा नहीं है। आज अगर दसवीं या बारहवीं क्लास का कोई बच्चा किसी मजलिस में चला जाए तो वहाँ से अपने साथ दो-चार बल्कि कभी-कभी तो 8-10 सवाल ले आता है। अगर वह सवाल लेकर आता है तो उसके सवालों का जवाब दिया जाना चाहिए, उसे डाँट कर

चुप नहीं करा देना चाहिए कि यह क्या बकवास लगा रखी है। चुप रहो! दीन में इस तरह की बातें नहीं की जातीं।

पहले ऐसा नहीं था। एक आदमी मजलिस में हज़ारों ऐसी बातें पढ़कर चला जाता था जो एक-दूसरे से टकराती थीं लेकिन कोई समझ भी नहीं पाता था जैसे किसी ने मिम्बर से कहा कि अल्लाह कोई भी काम बिना वजह के नहीं करता। सब कहते थे कि हाँ! बिल्कुल सही बात है। फिर इसके बाद जब वह कहता था कि अगर आदमी अंधा है तो यह उसकी क़िस्मत है और इस बात को इस तरह कहता था जैसे सारा किया-धरा क़िस्मत का ही है, अल्लाह का इस में कोई हाथ नहीं है तब भी लोग कहते थे कि हाँ! सही बात है। भला अल्लाह किसी को क्यों अंधा बनाएगा?

कहते हैं कि नेशापुर का मशहूर शायर ताज नेशापुरी एक बार तेहरान गया। उसकी आवाज़ बहुत अच्छी और दर्द भरी थी इसलिए उसको सुनने के लिए बहुत लोग आते थे। एक दिन उस वक़्त के ईरान के प्राइम मिनिस्टर ने कहा कि इतने लोग तुम्हें सुनने के लिए आते हैं उनके बीच ज़रा कुछ काम की बातें भी कर लिया करो। बेकार में लोगों का वक़्त बर्बाद करते हो। ताज नेशापुरी ने कहा कि यह लोग ऐसे हैं ही नहीं कि इन के सामने काम की बातें की जाएं। काम की बातें उन लोगों के साथ की जाती हैं जिनके पास समझ होती है। इनके पास समझ ही नहीं है। प्राइम मिनिस्टर ने कहा कि नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है। ताज नेशापुरी ने कहा कि ऐसा ही है। मैं इस बात को साबित कर सकता हूँ। एक दिन ताज नेशापुरी ने इमाम हुसैन[अ०] के घर वालों के कूफ़े में पहुँचने के हालात पढ़ना शुरू कर दिए। उसकी आवाज़ तो दर्द भरी थी ही। वह पढ़ता जा रहा था और नीचे हर तरफ़ से लोगों के रोने की आवाज़ें बढ़ती जा रही थीं। कोई अपना सर पीट रहा था और कोई अपना सीना। अचानक ताज नेशापुरी ने कहा कि ठहरो! ठहरो! जब सब को चुप करा दिया तो कहा कि अब मैं आप लोगों के सामने इमाम हुसैन[अ०] के छोट-छोटे बच्चों पर पड़ने वाली

मुसीबतें पढ़ना चाहता हूँ। फिर उसने कहना शुरू किया कि जब अहलेबैत[अ०] कूफ़े पहुँचे तो वहाँ गर्मी बहुत ज़्यादा थी। ऐसा लगता था जैसे सूरज बिल्कुल सर के ऊपर दहक रहा हो। गर्मी और प्यास से सब की ज़बानें बाहर निकली हुई थीं। छोटे-छोटे बच्चे भी उस भयानक गर्मी में प्यास से तड़प रहे थे। इसी हालत में उन बच्चों को नंगी पीठ वाले ऊँटों पर बिठा दिया गया। ज़मीन पर बर्फ़ जमी हुई थी इसलिए ठंड से ऊँट काँप रहे थे जिसकी वजह से बच्चे उनकी पीठ से गिरते जा रहे थे और पानी के लिए तड़प रहे थे।

ताज नेशापुरी यह सब पढ़ रहा था और लोग अपने चेहरों को पीट रहे थे और रोते जा रहे थे।

मजलिस के बाद जब ताज नेशापुरी मिम्बर से नीचे उतरा तो उसने प्राइम मिनिस्टर से कहा कि मैं नहीं कहता था कि इन लोगों के पास समझ है ही नहीं? इन लोगों की यह भी समझ में नहीं आया कि इतनी तेज़ गर्मी में भला बर्फ़ कैसे जम सकती है?

बहरहाल असली बात यह कहना थी कि हमारी यह नई जवान पीढ़ी जहाँ एक तरफ़ खुली सोच और ऊँची-ऊँची उड़ानों वाली है और बड़े-बड़े ख़्वाब देख रही है वहीं इसके अंदर कुछ ख़राबियाँ भी हैं। जब तक इन जवानों की समझ, सोच, दुखःदर्द, परेशानी और जज़्बात पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक हम इन्हें सही रास्ते पर नहीं ला सकते।

यह जवान दीन से दूर क्यों भाग रहे हैं?

सही बात तो यह है कि दूसरों ने यानी दुश्मनों ने हमारी इस जवान पीढ़ी के इस दर्द को अच्छी तरह समझ लिया है और यहीं से उसे सीधे रास्ते से भटका भी दिया है। यह सब हमारे इसी मुल्क में ही हुआ है। दीन से दूरी वाली सोच पर जन्म लेने वाले कम्युनिस्टों ने इसी जगह और इसी मुल्क में

हमारे जवानों को अपनी तरफ़ खींचा था और उन्हें अपने रास्ते पर लगा लिया था। यह काम उसी ढंग से हुआ है जो अभी ऊपर बताया गया है। उन्होंने हमारे जवानों के दर्द को समझ लिया था कि इस पीढ़ी को अपने सवालों के जवाब चाहिएं। उन्हें पता चल गया था कि इन जवानों के दिलों में उमंगें जन्म ले चुकी हैं और यह अपनी उमंगों को पूरा करना चाहते हैं। अल्लाह का इंकार करने वाले कम्युनिस्टों ने उन्हें बताया कि हमारे पास तुम्हारे हर सवाल का जवाब है और हम तुम्हारी हर उमंग को पूरा कर सकते हैं। इसका रिज़ल्ट यह निकला कि न जाने कितने जवान ख़ुशी-ख़ुशी उनकी तरफ़ खिंचे चले गए और वह भी सच्ची नियत और पूरी लगन के साथ। आदमी है ही कुछ ऐसा कि जैसे ही उसे किसी चीज़ की ज़रूरत होती है तो फिर वह अच्छे-बुरे के चक्कर में नहीं पड़ता। जब आदमी को तेज़ भूख लगती है तो फिर वह यह नहीं देखता कि क्या खा रहा है। जो मिल जाता है उसी को खाकर अपने पेट की आग बुझा लेता है। रूह[1] भी इसी तरह है। अगर रूह की भूख-प्यास न मिटाई जाए तो वह भी सामने आने वाली हर बात को आँख बंद करके मान लेती है। ग़लत हो या सही, जो भी उसके सवालों के जवाब दे देगा और उसकी उमंगों को पूरा कर देगा आदमी आँख बंद करके उसके पीछे चल पड़ेगा। आमतौर पर आदमी अक़्ल के पीछे नहीं भागता बल्कि सिस्टम के पीछे भागता है। जो चीज़ भी सजी-सजाई और सिस्टमेटिक होगी उसे अच्छी लगने लगेगी। जो भी उसके सवालों के जवाब दे देगा आदमी उसके पीछे चल देगा।

[1] आत्मा

समझदारी की निशानी

दूध बढ़ाई के बाद से ही बच्चे का दिमाग़ फलने-फूलने लगता है और इसी वक़्त से उसके अंदर सवाल भी जन्म लेने लगते हैं। वह अपने आसपास की हर चीज़ के बारे में जानना चाहता है। वह जो भी सवाल करे उसकी समझ के हिसाब से उसके सवाल का जवाब ज़रूर दिया जाना चाहिए। उसके सवालों के जवाब में उसे झिड़कना या डाँटना नहीं चाहिए जैसे तुम अपना काम करो, तुम्हें इस से क्या मतलब, हर वक़्त सवाल करते रहते हो.. बच्चे से ऐसी बातें बिल्कुल नहीं करना चाहिएं। ख़ुद यह सारे सवाल ही उसकी समझ के फलने-फूलने की निशानी हैं। यह सवाल बताते हैं कि अब उसका दिमाग़ और उसकी समझ धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। यह सवाल नेचुरल हैं और उसके नेचर से निकलने वाली आवाज़ हैं। उसके नेचर की इस आवाज़ को दबाना नहीं चाहिए बल्कि उसके सवालों के जवाब देकर उसकी इस ताक़त को बढ़ने देना चाहिए।

बच्चे ही की तरह समाज भी होता है। अगर समाज में समझदारी दिखाई देने लगे और समझदारी की नई-नई कोंपलें फूटने लगें तो यह समाज के आगे बढ़ने और तरक़्क़ी करने की निशानी है। यह भी नेचुरल है और यह भी समाज के नेचर से निकलने वाली आवाज़ है जो इस बात का सुबूत है कि अब समाज की ज़रूरतें बढ़ गई हैं और वह हम से कुछ और भी चाहता है। इन बातों को और जवानों के हुल्लड़-हंगामों व मटरगश्तियों को अलग-अलग रखा जाना चाहिए। दोनों को मिलाना नहीं चाहिए क्योंकि इन दोनों में फ़र्क़ है। इन दोनों चीज़ों को एक चीज़ समझने की ग़लती कभी नहीं करना चाहिए।

अल्लाह ने इस बारे में भी अपनी किताब में यूँ फ़रमाया हैः

अगर तुम ज़मीन वालों की अकसरियत (Majority) के रास्ते पर चल पड़ोगे तो यह तुम्हें अल्लाह के रास्ते से भटका देंगे।[1]

अगर अल्लाह उनकी बातों को मान लेता तो ज़मीन-आसमान और इन के बीच जो कुछ भी है वह सब बर्बाद हो जाता।[2]

क़ुरआन को छोड़ देना

आज हम अपनी इस नई पीढ़ी के बारे में शिकायत करते हैं कि इस ने क़ुरआन को भुला दिया है और उठाकर एक तरफ़ रख दिया है। क़ुरआन पर ध्यान देना तो दूर यह तो क़ुरआन को पढ़ भी नहीं सकते। इसमें कोई शक नहीं है कि यह दुख की बात है लेकिन हमें अपने आप से भी सवाल करना चाहिए कि हम ने इस काम के लिए अभी तक क्या किया है? क्या हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि मोहल्ले-मोहल्ले में जो मदरसे खुले हुए हैं क्या इन से हमारी यह नई पीढ़ी क़ुरआन और दीन को समझ पाएगी?

असली बात यह है कि ख़ुद पिछली पीढ़ी ने भी क़ुरआन को छोड़ दिया है और भुला दिया है मगर अब इस नई पीढ़ी के बारे में कह रही है कि इस ने क़ुरआन को छोड़ दिया है। सही बात तो यह है कि क़ुरआन ख़ुद हमारे बीच से भी ग़ायब हो गया है क्योंकि इस नई पीढ़ी से पहले हम ही ने क़ुरआन को एक तरफ़ उठाकर रख दिया था। जब हम ने ही क़ुरआन को भुला दिया है तो हम इस नई पीढ़ी से कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि यह क़ुरआन को अपने सीने से लगाए रहेगी?

आइए! देखते हैं कि क़ुरआन कैसे हमारे बीच में नहीं है।

---

[1] सूरए/116
[2] सूरए मोमेनून/71

अगर किसी के पास क़ुरआन का इल्म[1] हो यानी वह क़ुरआन में ज़्यादा सोच-विचार करता हो और क़ुरआन की तफ़सीर को पूरी तरह समझता हो तो ऐसे आदमी की हमारे बीच कितनी इ़ज़्ज़त होती है? कुछ भी इ़ज़्ज़त नहीं होती। लेकिन इसके मुक़ाबले में अगर कोई मुल्ला काज़िम ख़ुरासानी की फ़िक़ह (Jurisprudence) की किताब ''किफ़ाया'' पढ़ा ले तो हर तरफ़ उसके चर्चे होने लगते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि क़ुरआन हमारे बीच होते हुए भी नहीं है जिसका रिज़ल्ट यह है कि क़ुरआन से दूरी की वजह से आज हम बुरी तरह से मुश्किलों व मुसीबतों में जकड़े हुए हैं।

रसूले इस्लाम[स०] अल्लाह से क़ुरआन के बारे में जिन लोगों की शिकायत करेंगे उन में हम भी होंगे और इस बारे में क़ुरआन ने साफ़-साफ़ कह दिया हैः

पालने वाले! मेरी क़ौम ने इस क़ुरआन को छोड़ दिया था।[2]

तेहरान से एक आलिम ज़ियारत के लिए ईराक़ गए। वहाँ वह आयतुल्लाह ख़ुई से भी मिले। उन्होंने आयतुल्लाह ख़ुई से पूछा कि आपने अपनी क्लास में क़ुरआन की तफ़सीर पढ़ाना क्यों बंद कर दी है? आयतुल्लाह ख़ुई ने कहा कि तफ़सीर की क्लास में कई तरह की अड़चनें हैं। उस आलिम ने कहा कि अल्लामा तबातबाई तो क़ुम में तफ़सीर पढ़ा रहे हैं और उन्होंने इस पर अपनी पूरी ज़िंदगी भी लगा दी है। आयतुल्लाह ख़ुई ने जवाब दिया कि अल्लामा तबातबाई ने अपनी ज़िंदगी लगाई नहीं है बल्कि लुटाई है। उन्होनें कभी यह सोचा ही नहीं कि उनका अपना कोई सोशल स्टेटस भी बनेगा या बनने के बजाए मिट जाएगा।

कितनी अजीब बात है कि अगर आज के ख़राब हालात में कोई अपनी पूरी ज़िंदगी क़ुरआन पर लगा दे तो भी उसको तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। रोटी-

---

[1] ज्ञान

[2] सूरए फ़ुरक़ान/30

कपड़ा, मकान, इज़्ज़त जैसी हर चीज़ से हाथ धोना पड़ता है लेकिन अगर कोई अपनी ज़िंदगी Islamic Jurisprudence की किताबों में लगा दे तो उसे हर चीज़ मिल जाती है। तभी तो फ़िक़ह की किताबों को पढ़ने, समझने व लिखने वाले हज़ारों मिल जाएंगे लेकिन दो ऐसे आदमी नहीं मिलेंगे जो सही से क़ुरआन को समझ लें और दूसरों को समझा भी दें। किसी से भी आप क़ुरआन की किसी आयत के बारे में पूछ लीजिए वह फ़ौरन यही कहेगा कि इस आयत की तफ़सीर पढ़ना पड़ेगी।

यह है हालत कि जिस क़ौम ने ख़ुद ही क़ुरआन को छोड़ दिया है वह अपनी नई पीढ़ी के बारे में कह रही है कि क़ुरआन पर चलना तो बहुत दूर की बात है, यह जवान तो क़ुरआन को हाथ भी नहीं लगाते।

अगर पिछली पीढ़ी ने क़ुरआन को न छोड़ा होता तो आज की यह पीढ़ी भी क़ुरआन को बिल्कुल न छोड़ती। यह हमारी ही ग़लती है जिसकी वजह से हमें अल्लाह के रसूल[स०] भी बुरा कहेंगे और ख़ुद क़ुरआन भी।

पिछली पीढ़ी ने भी क़ुरआन पर ज़ुल्म किया है और इस नई पीढ़ी ने भी। पहले पिछली पीढ़ी ने ज़ुल्म किया जिसके बाद उसकी देखा-देखी इस नई पीढ़ी ने भी ज़ुल्म करना शुरू कर दिया।

नई पीढ़ी के मार्ग-दर्शन के लिए दो काम बहुत ज़रूरी हैंः

(1) इस पीढ़ी के दर्द को समझकर उसे दूर करने की कोशिश की जाए। इस दर्द को समझे बिना हर काम बेकार है।

(2) पहले ख़ुद अपने आप को सुधारा जाए। पिछली पीढ़ी यानी आज के बूढ़ों को अपने इस सब से बड़े गुनाह पर दिल से तौबा करना चाहिए जो उन्होंने क़ुरआन को छोड़कर किया है। हमें खुले दिल से क़ुरआन की तरफ़ वापस आना चाहिए और क़ुरआन को अपनी ज़िंदगी में सब से आगे रखना चाहिए।

बस यही एक वह रास्ता है जिस पर चलकर हम इस दुनिया में भी और मरने के बाद भी कामयाब हो सकते हैं।

*****